प्रकाशकीय वक्तव्य

अंग्रेजी तथा योरोपीय भाषाओं की तुलना में हिन्दी में समाजशास्त्रीय साहित्य का नितान्त अभाव है। विगत दस वर्षों में कुछ पुस्तकें प्रकाशित अवश्य हुई हैं, किन्तु उनमें से अधिकांश निम्न स्तर की पाठ्य पुस्तकें ही हैं। यदि हमें राष्ट्र–भाषा हिन्दी को समृद्ध बनाना है तथा भारत में समाजशास्त्रीय चिन्तन का वास्तविक विकास करना है, तो इस बात की अनिवार्य आवश्यकता है कि हिन्दी में समाजशास्त्र विषयक उच्च कोटि के मौलिक ग्रन्थों के साथ विश्व–समाजशास्त्रीय साहित्य की श्रेष्ठ कृतियों के हिन्दी–रूपान्तर अवश्यक प्रकाशित किए जाएं। दुर्भाग्य यह है कि अभी तक हिन्दी में इस दिशा में कोई विशेष कार्य नहीं हुआ है।

प्रस्तुत पुस्तक का अनुवाद हिन्दी में समाजशास्त्रीय साहित्य के सर्वप्रथम लेखक, समाजशास्त्र के अनेक महत्वपूर्ण मौलिक ग्रन्थों के प्रणेता तथा कई साहित्यिक ग्रन्थों और पत्रों के संपादक श्री शम्भूरत्न त्रिपाठी ने किया है। त्रिपाठी जी का विषय और भाषा दोनों पर अधिकार है, अतः अनुवाद पर्याप्त सफल हुआ; इसमें अनुवाद की अस्पष्टता और जटिलता कहीं नहीं परिलक्षित हो रही है। आशा है, पाठक इस कृति से लाभान्वित होंगे।

इन पुस्तकों के अतिरिक्त समाजशास्त्र–संसद ने 'समाजशास्त्रीय चिन्तक पुस्तकमाला' का भी प्रकाशन प्रारम्भ किया है, जिसमें विश्व के प्रमुख समाजशास्त्रीय चिन्तकों पर पुस्तकें प्रकाशित की जा रही हैं।

प्रकाशन मन्त्री
उमाशंकर श्रीवास्तव

विषय–सूची

अनुवादक की भूमिका

— 1 —

डा0 एडवर्ड एलेक्जेण्डर वेस्टरमार्क बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न मनीषी, युगान्तरकारी विचारक और अपराजेय अनुसन्धानकर्ता था; उसमें मानव–वैज्ञानिक और क्षेत्रीय अन्वेषक, इतिहासकार और नीतितत्त्ववेत्ता, दार्शनिक और समाजशास्त्री के अप्रतिहत रूप समाहित थे; वह अथक अध्यवसाय का मूर्त रूप, बौद्धिक साहस का जीवन्त स्मारक, मानसिक गतिशीलता का ज्वलन्त प्रतीक था; उसका सूक्ष्म विवरणों पर अद्‌भुत अधिकार, प्रमाणों पर कौशलपूर्ण नियन्त्रण तथा कलात्मक अभिव्यक्ति पर निरंकुश शासन था; उसने अपने प्रखर व्यक्तित्व, तलस्पर्शी अनुसन्धान, चिरस्थायी कृतित्व से समाजशास्त्र के इतिहास में विशिष्ट स्थान बनाया, समाजशास्त्रीय चिन्तन को नव्य चेतना प्रदान की तथा वैज्ञानिक शोध के नए आयामों का उद्‌घाटन किया। निस्सन्देह, डा0 वेस्टरमार्क केवल अपनी विवाह और परिवार सम्बन्धी प्रस्थापनाओं, मान्यताओं और चिन्तनाओं के द्वारा ही युग–युगों तक भावी मानवशास्त्रियों और समाज–वैज्ञानिकों का प्रेरक और पथ–प्रदर्शक रहेगा।

डा0 वेस्टरमार्क का तीन भौगोलिक और सांस्कृतिक परिवेशों से निकटतम सम्पर्क रहा : जन्मभूमि के रूप में फिनलैण्ड से, बौद्धिक विकास के लिए इंग्लैण्ड से तथा वैज्ञानिक सर्वेक्षण के हेतु मोरक्को से।

वेस्टरमार्क का जन्म सन् 1862 में, फिनलैण्ड के हेलसिंगफोर्स नगर में हुआ था। उसके पिता हेलसिंगफोर्स विश्वविद्यालय में कोषाध्यक्ष थे, तथा उसकी माता विश्वविद्यालय के प्राध्यापक की पुत्री थी। इस प्रकार, उसे बचपन से ही बौद्धिक और शैक्षणिक पर्यावरण प्राप्त था।

वेस्टरमार्क की उच्च शिक्षा हेलसिंगफोर्स विश्वविद्यालय में ही हुई उसने पूर्व स्नातक छात्र के रूप में आधुनिक साहित्य, ग्रीक भाषा, सामान्य इतिहास, दर्शनशास्त्र तथा मनोविज्ञान का अध्ययन किया। सन् 1886 में, उसने हेलसिंगफोर्स विश्वविद्यालय से पी–एच0बी0 तथा पी–एच0एम0 की उपाधियाँ प्राप्त कीं, और तत्पश्चात् कुछ इस अवधि में उसने हेकेल, हरबर्ट स्पेंसर, चार्ल्स डारविन, एल0 एच0 मार्गन, मैकलेनान, लूबॉक आदि

विद्वानों की कृतियों का विशेष अनुशीलन किया। मार्गन, मैकलेनान और लूबाँक मानवशास्त्र के मूर्धन्य विद्वानों में से थे। इनकी कृतियों ने, वेस्टर मार्क में आदिम काम–स्वच्छन्दता की प्राक्कल्पना के प्रति विशेष अभिरुचि उत्पन्न कर दी। फलतः उसने विवाह के उद्‌भव और विकास पर एक विस्तृत ग्रंथ लिखने का निश्चय किया।

सन् 1886 तक विवाह के विकास पर अत्यन्त सीमित और संकुचित कार्य हुआ था। यह कार्य अप्रामाणिक, अवैज्ञानिक और अस्पष्ट था। इस विषय पर कार्य करने के लिए वेस्टरमार्क को पर्याप्त व्यापक और सूक्ष्म अध्ययन की आवश्यकता थी। इसी विचार से वह सन् 1887 में इंगलैण्ड गया, और वहाँ वह लन्दन के ''ब्रिटिश म्यूजियम'' के विश्व विख्यात पुस्तकालय में अपनी पुस्तक के लिए सामग्री संकलित करने लगा। इस कार्य के साथ–साथ वह इंगलैण्ड के तत्कालीन प्रख्यात विद्वानों से विचार–विमर्श भी करता रहा। इस अवधि में, वह मनोवैज्ञानिक जेम्स सूली, तर्कशास्त्री एलेक्जेण्डर शैण्ड, एल्फ्रेड सिजविक, अर्थशास्त्री एफ0 वाई0 एजवर्थ तथा प्राणिशास्त्री रोमन्स के विशेष सम्पर्क में आया। उसने एक वर्ष तक अथक परिश्रम करके अपनी पुस्तक की सामग्री संकलित की तथा रूपरेखा तैयार की।

सन् 1888 में वेस्टरमार्क फिनलैण्ड वापस आ गया और अपनी पुस्तक के लेखन–कार्य में लग गया। सन् 1889 में, उसने इस पुस्तक का प्रथम अध्याय ''मानव विवाह की उत्पत्ति'' (ओरजिन आफ ह्यमन मैरिज'') के नाम से प्रकाशित कराया। इसी पर हेलसिंगफोर्स विश्वविद्यालय ने उसे डाक्ट्रेट की उपाधि प्रदान करके सम्मानित किया।

सन् 1890 में वह पुनः इंगलैण्ड गया, और वहाँ रह कर उसने सम्पूर्ण पुस्तक की पाण्डुलिपि प्रकाशनार्थ तैयार की, जो सन् 1891 में, ''हिस्ट्री आफ ह्यूमन मैरिज'' (मानव विवाह का इतिहास) के नाम से प्रकाशित हुई। इस पुस्तक के से डा0 वेस्टरमार्क को प्रचुर ख्याति और प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। अब वह मानवशास्त्री और समाजशास्त्री के रूप में विद्वानों के बीच समादृत होने लगा।

सन् 1890 में डा0 वेस्टरमार्क हेलसिंगफोर्स विश्वविद्यालय में अवैतनिक अध्यापक नियुक्त हुआ। तीन वर्षों तक उसने यहाँ पर अध्यापन कार्य किया। सन् 1893 में,

विश्वविद्यालय ने उसे अध्ययन; अनुसंधान के लिए आर्थिक अनुदान प्रदान किया। अतः वह इसी वर्ष लन्दन चल गया और वहाँ रह कर ब्रिटिश म्यूजियम–पुस्तकालय में अपनी आगामी पुस्तक– ''आरिजिन एण्ड डेवलपमेण्ट आफ दि मारल आइडियाज'' नैतिक विचारों का उद्भव और विकास) के लिए सामग्री संकलित करने लगा। इस अवधि में वह ई0 बी0 टेलर तथा आर0 आर0 मैरेट के सम्पर्क में आया। इन विद्वानों की प्रेरणा से उसे नृतत्वशास्त्रीय क्षेत्रीय अध्ययन (इथनोलाजिकल फील्ड स्टडी) में अभिरुचि उत्पन्न हुई। इस दिशा में, विशेष अध्ययन के उद्देश्य से उसने मोरक्को के आदिवासियों की आदिम संस्कृति का विशेष अध्ययन करने का निश्चय किया। सन् 1899 में वह पहली बार मोरक्को गया और उसने आदिवासियों के बीच पर्याप्त समय व्यतीत किया। इसके पश्चात् वह प्रतिवर्ष गर्मियों में छुट्टियों में मोरक्को आ जाता था। कुल मिला कर उसने अनुमानतः नौ वर्षों का समय इन आदिवासियों की संस्कृति के अध्ययन में लगाया। यह कार्य विपुल साहस, धैर्य और अध्यवसाय का था। लेकिन इस अध्ययन से उसे बहुत लाभ भी हुआ। उसे विवाह, परिवार और नैतिक विचारों के उद्भव और विकास पर प्रकाश डालने के लिए प्रचुर प्रमाण प्राप्त हुए। इन प्रमाणों से उसने जहाँ अपने पूर्ववर्ती विद्वानों की भ्रामक मान्यताओं का खण्डन किया, वहीं इनकी सहायता से अपने सिद्धान्तों को वैज्ञानिक आधार भी प्रदान किया।

सन् 1904 में, डा0 वेस्टरमार्क की नियुक्ति लन्दन विश्वविद्यालय के समाजशास्त्र विभाग में हुई, लेकिन यह कार्य अंशकालिक था। सन् 1906 में, वह फिनलैण्ड विश्वविद्यालय में भी व्यावहारिक दर्शन के प्राध्यापक के रूप में नियुक्त हो गया। इसके पश्चात् सन् 1918 में, वह टुकू के फिनिश विश्वविद्यालय में 'रेक्टर' पद पर भी आसीन हुआ। सन् 1904 से 1930 तक डा0 वेस्टरमार्क लन्दन विश्वविद्यालय के समाजशास्त्र विभाग से सम्बद्ध बना रहा। इस पद पर रहते हुए उसने अध्यापन, अनुसन्धान और लेखन के द्वारा समाजशास्त्र के विकास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान किया। इस महामनीषी का देहावसान, लगभग 77 वर्ष की अवस्था में, 3 सितम्बर सन् 1939 को हुआ।

डा0 वेस्टरमार्क, यद्यपि, दार्शनिक और नीतितत्त्ववेत्ता के रूप में भी विख्यात था, लेकिन उसकी मूलवृत्ति वैज्ञानिक की थी, दर्शनशास्त्र का छात्र होते हुए भी उसकी जर्मन

तत्त्वदर्शन में कोई रूचि नहीं थी; वह प्रयोग और प्रमाण सिद्ध तथ्यों में विश्वास करता था। इसीलिए उसने अपनी प्राक्कल्पनाओं और प्रस्थापनाओं के सत्यापन के लिए अनुभववाद (Empiricsm) को आधार बनाया, तथा जीवन के नौ वर्ष मोरक्को के आदिवासियों के बीच क्षेत्रीय सर्वेक्षण में व्यतीत किए। वह जीवनपर्यन्त अनीश्वरवादी रहा, यद्यपि धर्म पर उसने समाजशास्त्रीय दृष्टि से पर्याप्त चिन्तन लेखन किया। उसने ''ओरिजिन एण्ड डेवलपमेण्ट आफ दि मारल आडियाज'' नामक ग्रंथ में एक प्रकार से धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन ही प्रस्तुत किया था। व्यावहारिक राजनीति में भी उसकी अभिरुचि थी, किन्तु बौद्धिक मनोवृत्ति और कार्यों के कारण वह राजनीति में कभी सक्रिय रूप से नहीं आ सका था। नगरों के कोलाहलपूर्ण और कृत्रिम वातावरण की अपेक्षा गाँवों का शान्त और प्राकृतिक पर्यावरण उसे विशेष अनुकूल अनुभव होता था। वह अपने छात्र जीवन में अवकाश मिलते ही गाँवों में चला जाता था। इसी अभिवृत्ति के कारण ही वह मोरक्को के आदिवासियों के साथ बड़ी शीघ्रता से अनुकूलन कर सका था।

डा0 वेस्टरमार्क की कृतियाँ संख्या में अल्प, आकार में व्यापक और महत्त्व में महान् है। उसकी मुख्य रूप से निम्नांकित कृतियाँ प्रख्यात हैं :–

1. हिस्ट्री आफ ह्यूमन मैरिज (1891),
2. आरिजिन एण्ड डेवलपमेण्ट आफ मारल आइडियाज, प्रथम भाग 1906 तथा द्वितीय भाग 1908
3. मैरिज सेरेमोनीज इन मोरक्को (1914),
4. हिस्ट्री आफ ह्यूमन मैरिज : तीन भाग; (1921),
5. रिचुअल एण्ड बिलीफ इन मोरक्को; दो भाग (1926),
6. शार्ट हिस्ट्री आफ ह्यूमन मैरिज (1926),
7. मेमोरीज आफ माई लाइफ (अंग्रेजी संस्करण : 1929),
8. विट एण्ड विजडम इन मोरक्को : स्टडी आफ नेटिव प्राबर्ब्स (1930),
9. इथिकल रिलेटिविटी (1932)
10. पैगन सरवाइवल्स इन मोहम्मेडन सिविलीजेशन (1933),

11. दि फ्यूचर आफ ह्यूमन मैरिज इन वेस्टर्न सिविलीजेशन (1936),

12. क्रिश्चियनिटी एण्ड मारल्स (1937)

इन प्रबन्ध पुस्तकों के अतिरिक्त उसके पत्र–पत्रिकाओं में लिखे गए लेख तथा विश्वविद्यालयों और सभाओं में दिए गए स्थायी महत्त्व के अनेक भाषण भी है, जो छोटी–छोटी पुस्तिकाओं के रूप में उस समय प्रकाशित हुए हैं।

— 2 —

डा0 वेस्टरमार्क का दृढ़ विश्वास था कि मनुष्य सभ्यता के इतिहास का उसी विधि से वैज्ञानिक अध्ययन होना चाहिए, जिससे सावयव प्रकृति के इतिहास (हिस्ट्री आफ आर्गेनिक नेचर) का होता है। वह आगे कहता है कि भौतिक और मानसिक जीवन की प्रघटनाओं के अध्ययन की तरह सामाजिक जीवन को कुछ समूहों में वर्गीकृत करना चाहिए, और प्रत्येक समूह का उसके उद्भव और विकास के सन्दर्भ में अन्वेषण होना चाहिए। इसी अवस्था में इतिहास समाजशास्त्र का अंग बन सकता है तथा वैज्ञानिक कहलाने का अधिकारी हो सकता है। डा0 वेस्टरमार्क का मत है कि विवरणात्मक इतिहास तो केवल विज्ञान को सामग्री प्रदान कर सकता है, लेकिन सामाजिक संस्थाओं के उद्भव और विकास पर कोई समुचित प्रकाश नहीं डाल सकता है। इसके अतिरिक्त अनेक ऐसी सूचनाएँ हैं, जो ऐतिहासिक अभिलेखों से नहीं प्राप्त होती हैं। अतः इन सूचनाओं को नृतत्त्वशास्त्रीय विवरणों से प्राप्त करना चाहिए।

डा0 वेस्टरमार्क की दूसरी महत्त्वपूर्ण मान्यता यह है कि सामाजिक प्रघटनाओं (फेनामेना) के अध्ययन में हमें सर्वप्रथम कारणों की खोज करनी चाहिए और कारणों के आधार पर सामाजिक प्रघटनाओं के अस्तित्व के सम्बन्ध में निष्कर्ष प्रस्तुत करने चाहिए। इन कारणों की खोज के लिए विपुल सामग्री का आलोड़न करना चाहिए और इस प्रक्रिया से जो बहुसंख्यक तथ्य उपलब्ध हों, उनकी तुलना करके उन कारणों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, जिन पर सामाजिक प्रघटनाएँ आधारित होती हैं। ये कारण प्राणिशास्त्र, मनोविज्ञान या समाजशास्त्र जैसे विज्ञानों के क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं। वह स्वयं मनोवैज्ञानिक कारणों को विशेष विश्वसनीय मानता है। उसका सुदृढ़ मत है कि सामाजिक संस्थाओं के उद्भव

और विकास में केवल ''नैसर्गिक प्रवृत्तियों'' (इंस्टिंक्ट) का ही महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इस प्रकार डा0 वेस्टरमार्क ने समाज–विज्ञानों में अनुभववाद (Empiricism) तथा तुलनात्मक पद्धति के विकास के लिए असाधारण प्रयत्न किया।

यहाँ पर यह संकेत कर देना आवश्यक है कि यद्यपि वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठता (आब्जेक्टविटी) की ओर विद्वानों का ध्यान सत्रहवीं या अठारहवीं शताब्दी में ही आकर्षित हो चुका था, लेकिन सन् 1900 तक समाज विज्ञान केवल दार्शनिक अनुमानों पर ही आधारित थे। डा0 वेस्टरमार्क पहला व्यक्ति था, जिसने समाज–विज्ञानों को तथ्याश्रित और प्रयोगाश्रित करने की दिशा में व्यावहारिक कदम उठाया। उसने सर्वप्रथम उन नृतत्त्वशास्त्रीय आंकड़ों (इथनोलाजिकल डेटाज) पर अपने सामान्यीकरणों (जनरलाइजेशन्स) को आधारित किया, जो अधिकाँशतः उसने क्षेत्रीय सर्वेक्षण द्वारा स्वयं संकलित किए थे और जिसकी उसने कठोर पुनर्परीक्षा भी की थी। डा0 वेस्टरमार्क अपनी इस पद्धतिशास्त्रीय (मैथडोलाजिकल) अग्रगामिता के कारण ही समाजशास्त्र और मानवशास्त्र के इतिहास में विशिष्ट स्थान का अधिकारी है।

— 3 —

डा0 वेस्टरमार्क उद्विकासवादी अवश्य था, लेकिन वह सामाजिक संस्थाओं के सम्बन्ध में अपने पूर्ववर्ती और समकालीन उद्विकासवादियों से असहमत था। विवाह और परिवार के सम्बन्ध में तत्कालीन विद्वानों का मत था कि एक विवाही परिवार (मानोगेमस फेमिली) का उद्भव काम–स्वच्छन्दता की अवस्था से हुआ। डा0 वेस्टरमार्क ने अथक अध्ययन और अनुसंधान द्वारा यह सिद्धान्त प्रतिष्ठित किया कि जैविकीय कारणों से परिवार प्रारम्भ से ही एक विवाही रहा : मनुष्य ने पशु–जगत् से उत्तराधिकार में जो नैसर्गिक प्रवृत्तियाँ प्राप्त की है, उनसे केवल एक विवाही परिवार ही सम्भव है।

परिवार के उद्भव के सम्बन्ध में वह अपना मत व्यक्त करते हुए कहता है कि मुख्य रूप से मनुष्य के बच्चे के दीर्घकाल तक पालन–पोषण और सुरक्षा की आवश्यकता के कारण परिवार–संस्था का जन्म हुआ। परिवार के स्वरूप के सम्बन्ध में उसका मत है कि

परिवार प्रारम्भ से ही पितृसत्तात्मक था। इस सिद्धान्त के समर्थन में, वह प्रचुर जैविकीय प्रमाण प्रस्तुत करता।

इन मुख्य और आधारभूत सिद्धान्तों के अतिरिक्त उसने अन्तर्विवाह, बहिर्विवाह, अपहरण, कन्या–मूल्य, वर–मूल्य, बहुपत्नीत्व, बहुपतित्व, समूह–विवाह, दहेज, तलाक, विवाह–संस्कार आदि विवाह–संस्था के विभिन्न अंगों और उनके विविध पक्षों के उद्‌भव और विकास का तर्क–संगत और प्रमाणसम्मत विवेचन किया।

–4–

डा0 वेस्टरमार्क के सम्पूर्ण कृतित्व में विवाह–विवेचन ने बहुत अधिक स्थान लिया। उसका विवाह सम्बन्धी सबसे पहला ग्रंथ डाक्ट्रेट का शोध–प्रबन्ध था, जो ''ओरिजिन आफ ह्यूमन मैरिज'' के नाम से सन् 1889 में प्रकाशित हुआ। लगभग एक वर्ष उपरान्त उसकी ''हिस्ट्री आफ ह्यूमन मैरिज'' नामक पुस्तक सन् 1891 में प्रकाशित हुई। इसके उपरान्त वह इस दिशा में मोरक्को के आदिवासियों में शोध–कार्य करता रहा है और जो सामग्री उपलब्ध हुई, उसके आधार पर उसने सन् 1921 में, ''हिस्ट्री आफ ह्यूमन मैरिज'' का संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण तीन मोटी–मोटी जिल्दों में प्रकाशित कराया। यह विवाह पर लिखा गया, विश्व–साहित्य का सबसे विशाल तथा अधिक महत्वपूर्ण और प्रामाणिक ग्रंथ है। सामान्य पाठकों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, इसका एक संक्षिप्त संस्करण, लगभग 500–600 पृष्ठों का सन् 1926 में प्रकाशित हुआ। सम्भवत सन् 1927 में, डा0 वेस्टरमार्क ने विवाह–संस्था के उद्‌भव और विकास पर लन्दन विश्वविद्यालय में भाषण दिया। यह भाषण उस समय छोटी पुस्तिका के रूप में ''मैरिज (विवाह) शीर्षक से प्रकाशित हुआ। इसमें उसके विवाह सम्बन्धी समस्त सिद्धान्त और विचार समाहित थे।

–5 –

मैं सन् 1950 में ''पारिवारिक समाजशास्त्र'' नामक पुस्तक लिख रहा था। उस समय मैंने वेस्टरमार्क की 'हिस्ट्री आफ ह्यूमन मैरिज' को क्रय करना चाहा, लेकिन देश के मूर्धन्य पुस्तक विक्रताओं से पूछताछ करने पर भी उपलब्ध नहीं हो सकी। इसके उपरान्त अनेक पुस्तकालयों की परिक्रमा की, किन्तु पुस्तक के दर्शन नहीं हो सके। इस विफल प्रयास के

कई वर्षों उपरान्त, कलकत्ता के कबाड़ी के यहाँ से सन् 1891 के प्रथम संस्करण की एक अधजली प्रति प्राप्त हुई। सौभाग्य से कुछ समय उपरान्त वेस्टरमार्क के भाषण की पुस्तिका कानपुर में प्राप्त हो गई। मेरी हार्दिक इच्छा हुई कि डा0 वेस्टरमार्क के दुर्लभ विचारों को हिन्दी पाठकों के समक्ष रखा जाय। अतः पाठकों की क्रय–क्षमता को दृष्टि में रखते हुए ''मैरिज'' का ही हिन्दी रूपान्तर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ।

इस अनुवाद में, मैंने मूल लेखक की भावना की अधिक–से–अधिक सुरक्षित रखने का अधिकतम प्रयास किया है। आशा है, पाठकों को यह अनुवाद सन्तोषजनक प्रतीत होगा।

इस अनुवाद–कार्य में मुझे अपनी पत्नी श्रीमती तारा त्रिपाठी से विशेष सहायता और सुविधा प्राप्त हुई। इसके प्रकाशन में मेरे परम मित्र, हिन्दी के प्रख्यात ऐतिहासिक उपन्यासकार और नाटककार श्री बाल्मीकि त्रिपाठी ने विशेष सहयोग प्रदान किया है। अतः मैं श्री त्रिपाठी जी का हृदय से आभारी हूँ।

15 अगस्त, 1965 ''शम्भू रत्न त्रिपाठी''

समाजशास्त्र –ससंद

108 / 121, पी0 रोड, कानपुर

1.

विवाह की उत्पत्ति

हम सब जानते हैं कि दो व्यक्तियों के परस्पर विवाहित होने का हम लोगों में क्या अर्थ होता है : विवाह स्त्री और पुरुष का एक ऐसा सम्मिलन है, जो एक निश्चित संस्कार के माध्यम से समाज द्वारा स्वीकृत होता है। यह कहा जा सकता है कि मानवीय संस्था के रूप में सामाजिक मान्यता विवाह की एक सार्वभौम विशेषता है। विवाह में दोनों दशाओं में—दोनों पक्षों के सम्मिलन में भाग लेने की स्थिति में तथा इसमें उत्पन्न होने वाले बच्चों की स्थिति में—अधिकार और कर्तव्य निहित होते हैं। सर्वप्रथम, यह विनियमित काम—सम्बन्ध है, इसी के साथ यह एक आर्थिक संस्था है, जो विभिन्न रूपों में सम्बन्धित व्यक्तियों के स्वामित्व सम्बन्धी अधिकारों को निर्धारित करती है। पत्नी और बच्चों का यथासम्भव पालन—पोषण करना पति का आवश्यक कर्तव्य है; किन्तु उसके लिए काम करना पत्नी और बच्चों का भी कर्तव्य हो सकता है। नियमानुसार उन पर उसको अधिकार प्राप्त है, यद्यपि अधिकाँश दशाओं में बच्चों पर उसका अधिकार सीमित अवस्था के लिए होता है। अधिकांशतः विवाह उस स्थान को निर्धारित कर देता है, जो नवजात शिशु उस समुदाय के सामाजिक संघटन में ग्रहण करने को होता है, जिसमें वह जन्म लेता है। अन्ततः यह आवश्यक है कि विवाह के रूप में स्वीकृत सम्मिलन, कानून या प्रथा द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार सम्पन्न होना चाहिए, भले ही ये नियम कुछ भी हों। इन नियमों के अन्तर्गत विवाह के लिए सम्बन्धित पक्षों या उनके माता—पिता अथवा दोनों की स्वीकृति की आवश्यकता हो सकती है। वे कन्या के माता—पिता को वर—पक्ष से कुछ मुआविजा दिलाने के लिए अथवा कन्या के माता—पिता से वर या वर—पक्ष को कुछ दहेज दिलाने के लिए विवश कर सकते हैं। वे किसी—न—किसी रूप में एक विशेष प्रकार का विवाह—संस्कार सम्पन्न करने की व्यवस्था निर्धारित कर सकते हैं। उस समय तक कोई पुरुष और स्त्री पति और पत्नी नहीं माने जाते हैं, जब तक प्रथा या कानून द्वारा निर्धारित शर्तों का पालन नहीं हो जाता है।

जहाँ तक विवाह–संस्था की उत्पत्ति का सम्बन्ध है, मेरे मत से सम्भवतः यह आदिम आदतों से विकसित हुई है। इसका सार यह है कि विवाह विषमलिंगी लोगों को इस योग्य बनाता है जिससे वे संयुक्त प्रयास से परिवार को उत्पन्न कर सकें और उसका पालन–पोषण कर सकें, और इस पर विश्वास करने का हमारे पास यह कारण है कि आदिमकाल में भी पुरुष में स्त्री (या अनेक स्त्रियों) के साथ रहने, परस्पर काम–सम्बन्ध स्थापित करने और उभय रूप में अपनी सन्तानों का पालन–पोषण करने की आदत थी, जिसमें पुरुष परिवार का पोषक और रक्षक होता था और स्त्री उसकी सहायिका, साथिन तथा अपने बच्चों की परिचारिका होती थी। इसी प्रकार की आदतें पशु–जगत की अनेक ऐसी अन्य जातियों में पायी जाती है, जिनमें संतति की रक्षा और जातियों के अस्तित्व के लिए विवाह और पैतृकता सम्बन्धी नैसर्गिक प्रवृत्तियाँ, साथ–साथ मातृत्व सम्बन्धी संवेदनाएं, स्पष्टतः आवश्यक होती हैं। बहुत अधिक पक्षियों में नर और मादा केवल ऋतुकाल (ब्रीडिंग सीजन) में ही साथ–साथ नहीं रहते हैं, बल्कि इसके बाद भी रहते हैं और इस प्रकार पैतृक नैसर्गिक प्रवृत्ति दोनों में अत्यधिक गहनता को पहुँच चुकी होती है। पशुओं की आदतों का सुविख्यात अध्येता डा. ब्रेह्म उनके अनुकरणीय पारिवारिक जीवन से इतना प्रभावित है कि वह उत्साह के साथ घोषित करता है कि वास्तविक प्रामाणिक विवाह केवल पक्षियों में पाया जा सकता है। अधिकांश स्तनधारियों के सम्बन्ध में इस प्रकार की बात नहीं कही जा सकती है। निस्संदेह, माता अपने बच्चों के कल्याण तथा स्नेहपूर्वक पालन–पोषण से उत्साहपूर्वक सम्बन्धित होती है, किन्तु नियमानुसार विषमलिंगियों का सम्बन्ध जाड़े की ऋतु तक ही सीमित होता है। इस नियम के भी अपवाद हैं। इन समस्त स्तनधारी जीवों में नर और मादा का सम्मिलन अधिक स्थायी ढंग का होता है। नर परिवार के रक्षक के रूप में कार्य करता है।

यह स्थिति प्रायः बन्दरों में होती है, जिनमें गोरिल्ला और चिम्पेंजी भी सम्मिलित हैं। विभिन्न विवरणों के अनुसार ये मनुष्याकार बन्दर पारिवारिक समूहों में पाये गए हैं, जिनमें वयस्क नर, एक या एक से अधिक मादायें, तथा एक या अधिक विभिन्न अवस्था के बच्चे होते हैं, इनके अतिरिक्त उनके परिवारों में वयस्क नर रक्षक भी होते हैं जो परिवार के

सदस्यों को खतरों से सावधान रखते हैं। किन्तु इससे भी बड़े आकार के झुंड देखे गए हैं। जब हम उच्चतम बन्दर से पुरुष तक पहुँचते हैं, तो हमें इसी प्रकार की प्रघटना देखने को मिलती है। निम्नतम जंगली मनुष्यों में तथा अधिकतम सभ्य मनुष्य की प्रजातियों में हमें माता–पिता तथा बच्चों से युक्त परिवार मिलते हैं, जिनमें पिता संरक्षक और पोषक के रूप में होता है। हमें इसकी बहुत अधिक सम्भावना प्रतीत होती है कि बन्दर और मनुष्य दोनों में, इन आदतों में निहित नैसर्गिक प्रवृत्तियां अल्पसंख्यक बच्चों के दीर्घकाल तक के शैशव से सम्बन्धित हैं जो सन्तानों के जीवन के अस्तित्व के लिये आवश्यक वैवाहिक और पैतृक सम्बन्ध को जन्म देती हैं।

निस्सन्देह, ऐसे कथन भी मिलते हैं कि कुछ लोग बिना पारिवारिक बन्धनों के काम–स्वच्छन्दता (प्रामिस्क्यूटी) की अवस्था में रहे हैं या रहते हैं। अनेक ऐसी प्रथायें पाई जाती हैं, जिनकी अतीत में इस प्रकार की अवस्था होने के रूप में व्याख्या की जाती है, और इस प्रकार की उपकल्पना स्थिर की गई है कि काम–स्वच्छन्दता आदिम मनुष्यों में सार्वभौम रूप से प्रचलित थी। किन्तु न तो ये कथन और न प्रारम्भिक काम–स्वच्छन्दता के कल्पित अवशेष ही प्रामाणिक महत्त्व के प्रतीत होते हैं। जिन लोगों के सम्बन्ध में काम–स्वच्छन्दता की स्थिति में रहने की बात कही जाती है, उन सबकी विस्तारपूर्वक परीक्षा करने के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि उनमें से किन्हीं भी कथनों को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता, अथवा उनमें से किसी से भी काम–स्वच्छन्दता के अस्तित्व की संभावना तक का ज्ञान नहीं होता, अर्थात् यह स्पष्ट है कि न तो ऐसे जंगली लोग आजकल हैं और न कुछ दिन पहले थे जो इस अवस्था में रहते हों या रहे हों। इससे जन–जातियों का अल्पज्ञान रखने वाले शास्त्रीय लेखकों की यह उपकल्पना अविश्वसनीय हो जाती है कि काम–स्वच्छन्दता अफ्रीका या एशियाई जनजातियों में प्रचलित थी। एक अध्याय में प्लिनी कहता है कि ग्रामिण्टियन पुरुषों और स्त्रियों में काम–स्वच्छन्दता की अवस्था थी, वह उसी अध्याय में हमें यह भी बताता है कि दूसरे अफ्रीकी लोग, ब्लेमियन, ऐसे होते थे जिनके सिर नहीं होते थे; मुँह और आँखें छाती में होती थीं। मैंने इस प्रकार का कथन किसी मानव–शरीर–रचना की पुस्तक में उद्धृत नहीं पाया है, और यह मान

लेने का कोई कारण नहीं प्रतीत होता कि हमारा लेखक 'ब्लेमियन' लोगों को प्रत्यक्ष रूप से देखने की अपेक्षा 'ग्रामिण्टियन' लोगों की काम–संबंधी आदतों से बहुत अधिक परिचित था। वस्तुतः काम–स्वच्छन्दता की उपकल्पना में तथ्यमूलक समस्त मूलाधारों का ही अभाव नहीं है, बल्कि यह, वास्तव में, उन सब सम्भावित निष्कर्षों के विपरीत है, जो हम मनुष्य की प्रारम्भिक दशा के सम्बन्ध में निकालते हैं। डार्विन ने यह बताया था कि नर चौपायों की पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा से ज्ञात होता है कि उनमें (मनुष्यों में) प्राकृतिक अवस्था में काम–स्वच्छन्दता का प्रचलन असंभव था। काम–स्वच्छन्दता की अवस्था में मनुष्यों के रहने का कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है। किन्तु निस्सन्देह ऐसे लोग हैं जिनमें बच्चा अपने पिता की अपेक्षा अपने मामा से अधिक घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होता है। बहुत थोड़े से अपवादों–सुमात्रा और असम की बहुत थोड़ी कृषक जनजातियों के–सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि वहाँ पत्नी के साथ पति के बिल्कुल न रहने की प्रथा होती है; पति केवल उस स्थान में पत्नी से मिल आता है जहाँ वह अपने केवल मातृपक्ष के सम्बन्धियों के साथ रहती है; उससे जो बच्चे उत्पन्न होते हैं, वे उसी के साथ रहते हैं। अधिकांशतः हमें यह बताया जाता है कि बच्चों पर पिता की अपेक्षा माता के भाई का अधिकार होता है, या उन पर उसका एकाधिकार होता है। इस प्रकार के उदाहरण अनेक असभ्य लोगों में देखने को मिलते हैं, जिनमें वंश केवल माता द्वारा चलते हैं; किन्तु मातृसत्तक जनजातियों के सम्बन्ध तक में सामान्य नियम के रूप में भी इसकी कल्पना नहीं करनी चाहिए कि मामा या मातृपक्ष का कोई भी सदस्य पिता की अपेक्षा बालकों पर अधिक अधिकार रखतता है। किसी भी अवस्था में जब बच्चे पिता के घर में रहते हैं तो प्रारम्भिक पैतृक कर्त्तव्यों को सार्वभौम रूप से स्वीकार किया जाता है, भले ही उसके अधिकार कितने ही सीमित क्यों न हों। कुछ मानव–शास्त्रियों का यह मत है कि पिता, माता औ बालकों से युक्त परिवार सर्वत्र सामाजिक संगठन का परवर्ती रहा है जिसमें पिता पूर्ण रूप से एक अधीनस्थ व्यक्ति था। किन्तु उनको इस निषेधात्मक तथ्य का सामना करना पड़ता है कि उन नितान्त निम्न जंगलियों में जो मुख्य या पूर्ण रूप से शिकार अथवा ऐसी प्राकृतिक वस्तुओं पर निर्भर करते हैं जिनको वे बिना भूमि के अथवा बिना घरेलू पशुओं को पाले प्राप्त करते हैं–

माता–पिता और बच्चों से युक्त परिवार एक अत्यन्त स्पष्ट सामाजिक इकाई के रूप में जिसमें पिता प्रधान और संरक्षक के रूप में होता है।

परिवार में पति और पिता के कार्य केवल कामात्मक और प्रजननात्मक ही नहीं होते हैं, बल्कि उसमें पत्नी और बच्चों के पोषण और सुरक्षा के कर्त्तव्य भी निहित हैं। इस कथन की सत्यता विश्व के समस्त क्षेत्रों तथा सभ्यता की समस्त अवस्थाओं से सम्बन्धित प्रचुर तथ्यों के द्वारा सिद्ध होती है। अनेक जंगली लोगों में पुरुष को उस समय तक विवाह की अनुमति नहीं दी जाती, जब तक वह कर्त्तव्यों के पालन की क्षमता का प्रमाण नहीं दे चुकता है। ब्रिटिश गाइना के मैकुसिस लोगों में किसी नवयुवक को, पत्नी चुनने की अनुमति प्राप्त करने के पूर्व, यह सिद्ध करना चाहिए कि वह पुरुष है तथा पुरुषोचित कार्य कर सकता है। उसे बिना हिचक के अपने मांस में घावों का बनना सहन करना पड़ता है, अथवा, ऐसे झूले में सिल दिये जाने को सहन करना पड़ता है जिसमें आग्नेय चीटियाँ भरी हुई हों, अथवा इसी प्रकार के अन्य परीक्षणों के द्वारा अपने साहस का प्रदर्शन करना पड़ता है। वह जंगल में कसावा वृक्ष लगाने के लिये स्थान की सफाई करता है, और यथासम्भव अधिकाधिक शिकार और मछलियाँ लाकर यह सिद्ध करता है ि कवह अपने तथा अन्य लोगों के भरण–पोषण में सक्षमह ै। ब्रिटिश पूर्वी अफ्रीका में वापोकोमो लोगों में अत्यधिक अल्पवय का बाल विवाह इस नियम के द्वारा निषिद्ध है कि कोई व्यक्ति उस समय तक विवाह नहीं कर सकता, जब तक वह एक मगर को मार नहीं लेता तथा उसका माँस अपनी भावी पत्नी को नहीं खिला देता है। जेम्बसी के दक्षिण की 'बेचुआना' और 'काफिर' जन–जातियों में नवयुवक को उसी समय पत्नी पाने का अधिकार होता है, जब वह एक गैंडे को मार लेता है। दक्षिणी–पूर्वी एशिया की नरभक्षी जनजातियों के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि उनमें कोई भी व्यक्ति उस समय तक विवाह नहीं कर सकता, जब तक वह अपने पराक्रम के प्रमाणस्वरूप कम–से–कम एक मानवमुण्ड पहले प्रस्तुत नहीं कर देता।

उपरोक्त विवरण से यह सिद्ध होता है कि विवाह और परिवार एक दूसरे से बहुत घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं, बच्चों के हित में ही पुरुष और स्त्री के साथ–साथ रहने की प्रथा बनी रही है। वास्तव में अनेक लोगों में जो औपचारिक रूप से विवाहित होते हैं या

सगाई कर चुकते हैं– उनका तब तक वास्तविक विवाहित जीवन आरम्भ नहीं होता अथवा विवाह उस समय तक निश्चित नहीं होता, जब तक बच्चा उत्पन्न नहीं हो जाता या गर्भ के लक्षण नहीं प्रकट हो जाते। दूसरी दशाओं में, जब लड़के–लड़की में ऐसे काम–सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं जिनसे गर्भ रह जाता है अथवा बच्चा उत्पन्न हो जाता है, तब नियमानुसार विवाह होता है या अनिवार्य रूप से विवाह कराया जाता है। वास्तव में, हम कह सकते हें कि विवाह का मूल परिवार में है, न कि परिवार का मूल विवाह में।

2.

विवाह का प्रचलन तथा विवाह की अवस्था

मनुष्यों की असभ्य प्रजातियों में, विवाह का केवल अस्तित्व ही नहीं है, अपितु हम लोगों की अपेक्षा उनमें इसका अधिक प्रचलन है। सामान्य नियम के अनुसार, प्रत्येक ऐसा पुरुष विवाह के लिए प्रयत्नशील होता है, जो यौवनारम्भ की अवस्था में पहुँच चुका है– जिसकी पहले सगाई नहीं हुई है – तथा व्यावहारिक रूप से प्रत्येक स्त्री विवाहित होती है। यहाँ तक कि जब युवा आदिवासी अविवाहित रहते हुए भी अपनी कामेच्छा की पूर्ति कर सकता है– जैसा किसी भी दशा में हमेशा नहीं होता है– फिर भी विवाह उसके लिए शीघ्र ही आवश्यक होता है। उसके लिए एक ऐसी महिला–संगिनी की आवश्यकता होती है जो उसके घर की देखभाल करे, खाना बनाए, खाल को सजाए, कपड़े तैयार करे, खाने योग्य जड़ें और रसभरी संग्रह करे, तथा कृषि जीवी लोगों में प्रायः भूमि जोते। इसके अतिरिक्त उसके पास ऐसी स्त्री होनी चाहिए जो उसके लिए बच्चे पैदा करे तथा उनका पालन–पोषण करे; क्योंकि जंगली परिस्थितियों में बिना सन्तानों के पुरुष अभागा माना जाता है तथा वहाँ व्यक्ति की सुरक्षा पारिवारिक सम्बन्धों पर आधारित होती है तथा वृद्धों को नवयुवकों के सहारे की आवश्यकता होती है।

आदिम संस्कृति के लोगों में, ब्रह्मचर्य बहुत बड़े अपवाद के रूप में ही देखने को मिलता है, तथा विवाह को एक कर्त्तव्य माना जाता है। समस्त चीनी, स्वस्थ या निर्बल, सुरूप या कुरूप, जब यौवनावस्था में पहुच जाते हैं, तो उनके माता–पिता उनके विवाह के लिए यथाशीघ्र प्रयत्न करते हैं। वंश परम्परा को आगे बढ़ाने के लिए पुत्र छोड़े बिना मरना मनुष्य पर पड़ने वाले बहुत बड़े दुर्भाग्यों में से एक माना जाता है। इसके अतिरिक्त व्यक्ति के समस्त पूर्वजों के प्रति किया गया अपराध समझा जाता है; क्योंकि यदि सन्तान न होगी तो समुचित सेवा न प्राप्त होने, पूर्वजों के मकबरों की पूजा न होने, पूर्वजों की टिकियों की देखभाल न होने, तथा मृतकों से संबन्धित अन्य संस्कारों के न सम्पन्न होने के कारण ये पूर्वज परलोक में अत्यन्त दयनीय स्थिति में संत्रस्त होंगे। सेमाइट लोगों में, हमें यह विचार

मिलता है कि जिस मृत व्यक्ति के सन्तान नहीं है, वह उस पूजा को नहीं प्राप्त कर सकेगा जो प्रारम्भिक काल में उसके पूर्वज प्राप्त किया करते थे जिससे परलोक में उन्हें जो कुछ मिलना चाहिए उसे वे खो देंगे। यहूदी लोग विवाह को एक धार्मिक कर्त्तव्य मानते हैं। वे अठारह वर्ष की अवस्था को पुरुष के विवाह की सामान्य अवस्था मानते थे और उनमें लड़कियाँ तो तेरह वर्ष की अवस्था में ही विवाह के योग्य समझी जाती थीं। इस्लाम उनके लिए विवाह को कर्त्तव्य मानता है 'जो विवाह की क्षमता रखते हैं।'' मुसलमानों में यह कथन प्रचलित है कि पैगम्बर ने एक पुरुष से पूछा, कि क्या वह विवाहित है ? उसके नाकारात्मक उत्तर देने पर पैगम्बर ने कहा; ''क्या तू स्वस्थ है ?'' उसके हाँ कहने पर पैगम्बर ने धिक्कारते हुए कहा, ''तब तू शैतान के भाइयों में से एक है।''

प्राचीन काल के तथाकथित आर्य राष्ट्रों में ब्रह्मचर्य को एक प्रकार का अधर्म और दुर्भाग्य माना जाता था : अधार्मिकता इसलिए थी क्योंकि जो विवाह नहीं करता था, वह अपने परिवार के पितृदेवों के सुख को नष्ट करता था, और दुर्भाग्य इसलिए था क्योंकि मृत्यु के उपरान्त उसे स्वयं कोई पूजा नहीं प्राप्त होगी। यह प्राचीन विचार आज भी हिन्दुस्तान में बना हुआ है : एक हिन्दू को विवाह करना चाहिए तथा अन्तिम संस्कार सम्पन्न करने के लिए पुत्र प्राप्त करना चाहिए, नहीं तो मृत्यु के बाद उसकी आत्मा मृत्युलोक के निरर्थक स्थानों में भटकती हुई कष्ट पाती रहेगी। विवाह एक कर्त्तव्य है, इसलिए प्रत्येक माता–पिता को अपनी सन्तानों का विवाह करना चाहिए। यदि किसी उच्च हिन्दू की कोई पुत्री यौवनारम्भ होने पर अविवाहित रहती है, तो उसके लिए इससे बढ़कर कोई दूसरा अभिशाप नहीं हो सकता है। प्राचीन ग्रीक लोगों में विवाह का व्यक्तिगत और सार्वजनिक दोनों महत्त्व था। वहाँ अनेक स्थानों में तो ब्रह्मचारियों को अपराधी माना जाता था तथा उनके विरुद्ध कानूनी कार्यवाही भी हो सकती थी। इसी प्रकार प्रारम्भिक काल में रोमन लोगों के मस्तिष्क में यह विचार गहरी जड़ें जमा चुका था कि गृहस्थी की स्थापना तथा सन्तानों का प्रजनन नैतिक आवश्यकता और सार्वजनिक कर्त्तव्य का एक अंग है। लेकिन परवर्ती काल में, जब स्त्रियों–पुरुषों को काम–सम्बन्धों में बहुत स्वतन्त्रता प्राप्त हो

गई, तो विशेष रूप से उच्च वर्ग में अविवाहितों की संख्या में वृद्धि हो गई तथा विवाह को एक भार समझा जाने लगा।

ईसाई धर्म ने विवाह का एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया जो प्राचीन सुसंस्कृत लोगों के सामान्य दृष्टिकोण से बहुत भिन्न था। सेण्टपाल ने विवाह की अपेक्षा कौमार्य को उचित समझा। 'जो विवाह करता है वह अच्छा है, लेकिन जो विवाह नहीं करता है, वह उत्तम है।' ''स्त्री को स्पर्श न करना पुरुष के लिए ठीक है। फिर भी, व्यभिचार को दूर रखने के लिए, प्रत्येक पुरुष के पास अपनी पत्नी हो, तथा प्रत्येक स्त्री का अपना पति हो।'' न्यू टेस्टामेण्ट के इन तथा अन्य उद्धरणों ने सामान्य लोगों को ब्रह्मचर्य के प्रति प्रोत्साहित किया; इसकी तुलना बसन्त–कुसुम से की गई जो सदैव अपनी श्वेत पंखुड़ियों से अमरत्व विकीर्ण करता रहता है। पुरुष की विवाह के उपयोग की अनुमति केवल दो उद्देश्यों से दी गई– 1. मानव प्रजाति के सातत्य के आवश्यक साधन के रूप में तथा 2. मनुष्य की नैसर्गिक कामुक प्रवृत्ति के नियन्त्रक के रूप में। ईसाइयों में सन्तान–उत्पन्न करना भूख को शान्त करने का एक साधन माना गया, जिसे उसी प्रकार करना चाहिए जिस प्रकार एक किसान खेत में आवश्यकतानुसार बीज बोकर फसल की प्रतीक्षा करता है, उस पर अधिक बीज नहीं बोता है। दूसरे शब्दों में, पति–पत्नी को संतानोत्पादन के अतिरिक्त यौन–सम्बन्धों में नहीं लिप्त होना चाहिए। इन अभिमतों ने धर्मनिरपेक्ष और नियमित पादरियों को अनिवार्य कौमार्य व्रत पालन के लिए प्रेरित किया।

समस्त ईसाई देशों के कानूनों द्वारा स्त्रियों और पुरुषों के विवाह की अवस्था निर्धारित की गई है। चर्च ने रोमन कानून के अनुबंध को स्वीकार किया था जिसके अनुसार एक पुरुष चौदह वर्ष की अवस्था में विवाह कर सकता है तथा स्त्री बारह वर्ष की अवस्था में विवाह कर सकती है। यद्यपि धार्मिक कानून के प्रभाव में, विवाह की ये अवस्थाएँ, आज भी विभिन्न देशों में बनी हुई हैं, लेकिन परवर्ती विधायनों में अवस्था की सीमा बढ़ाने की प्रवृत्ति देखने को मिलती है। अनेक देशों में विवाह की अवस्था, पुरुष के लिए इक्कीस वर्ष और स्त्री के लिए अट्ठारह वर्ष कर दी गई है। अनेक देशों में धार्मिक कानून से सम्बन्धित अवस्था सीमा को सुरक्षित नहीं रखा गया है, वहाँ कानून द्वारा स्वीकृत

अवस्था से पूर्व विवाह करने की बाधा को कानून की अवहेलना करके दूर किया जा सकता है।

योरोप में लोग जिस अवस्था में वास्तविक रूप में विवाह करते हैं उसके तथा विवाह करने की अभिरुचि के सम्बन्ध में सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि आधुनिक सभ्यता विवाह संस्था के लिए प्रतिकूल सिद्ध हुई तथा विवाह करने की औसत अवस्था भी बढ़ गई है, अर्थात्, बहुत लोग विवाह करने के पक्ष में ही नहीं रहते हैं और जो करते भी हैं, वे अवस्था अधिक हो जाने पर करते हैं। विभिन्न योरोपीय देशों में विवाह के दरें भिन्न–भिन्न हैं, जैसा नीचे दिए गए आंकड़ों से प्रतीत होता है जिनमें प्रति दस हजार विवाह–योग्य व्यक्तियों में से प्रति वर्ष विवाह करने वाले व्यक्तियों की संख्या दी गई है। ये आंकड़े उन अवधियों के हैं जो प्रथम महायुद्धजनित परिस्थितियों से अप्रभावित थीं। सरबियो (1896–1905) में विवाहों की संख्या उच्चतम थी, अर्थात् 1,386 थी, जर्मनी में (1907–14) में 569 थी, फ्रांस में (1910–11 में) 539 थी, इंगलैण्ड और वेल्स में (1909–14 में) 507 थी और स्काटलैण्ड में इसी अवधि में 411 थी। उन कुमारों और कुमारियों की औसत अवस्था, जिन्हों ने विवाह किया, सेरबिया में (1896–1900 में) क्रमशः 27.8 और 19.7 जर्मनी में (1911–14 में) 27.4 और 24.7, इंगलैण्ड में (1906–14 में) 27.4 और 25.7, स्काटलैण्ड में इसी अवधि में 27.8 और 25.8, और फ्रॉस में (1906–10 में) 28.0 और 25.8 थी। ऐसा ज्ञात हुआ है कि विभिन्न योरोपीय देशों में अविवाहित लोगों तथा विवाह की अवस्था का अनुपात विगत कुछ वर्षों में ऊँचे उठा है। इंगलैण्ड और वेल्स में 1876–85 की अवधि में विवाह–योग्य प्रति 10,000 व्यक्तियों में से प्रति वर्ष 568 व्यक्तियों के विवाहित होने का औसत था, तथा वरों और कन्याओं की औसत अवस्था क्रमशः 25.9 और 24.4 थी।

योरोप में विवाहों की संख्या कम होने तथा विवाह की अवस्था ऊँचे उठने का बहुत महत्त्वपूर्ण कारण आधुनिक समाज में परिवार के भरण–पोषण में कठिनाई होना है। आर्थिक कारक की महत्ता पर संख्याशास्त्रियों द्वारा बहुत जोर दिया गया है। इसे करीब–करीब स्वयंसिद्ध तथ्य सा माना गया है कि विवाहों की संख्या मकाई के सांख्यिकीय मूल्य के साथ प्रतिलोमतः परिवर्ती है। जर्मनी में, प्रायः 1860 तक देखा गया है कि जब राई

(खाद्यान्न) का मूल्य बढ़ता है, तो विवाहों की संख्या घटती है; लेकिन बाद में जर्मनी में उद्योगों और व्यवसायों का इतना अधिक विकास हुआ कि भोजन का मूल्य जनसाधारण की समृद्धि का केवल एक आर्थिक तत्त्व रह गया है। 1820 के पूर्व तक इंगलैण्ड में, विवाहों की संख्या तथा तथा मकाई के मूल्य में कोई सम्बन्ध नहीं देखा गया; इसके विपरीत, विवाह की दरें गेहूँ के मूल्य के साथ प्रतिलोमतः परिवर्ती होने के बजाय साथ–साथ घटती और बढ़ती हुई पायी गई हैं। इस तथ्य की व्याख्या में यह बताया गया है कि निर्यात और आयात की वृद्धि से माल के मंगाने और भेजने में खर्च लगता है, और इस प्रकार अन्न के मूल्य में वृद्धि हो जाती है, इसके साथ पुरुष उस समय अधिक संख्या में विवाह करते हैं जब व्यापार खूब तेजी पर होता है तथा निर्यात का मूल्य बढ़ जाता है। सामान्य रूप से आर्थिक प्रगति होने के बावजूद भी लोगों का विवाह के प्रति अनिच्छुक होने का कारण किसी सीमा तक सब वर्गों की सुख–सुविधा के स्तर में सतत वृद्धि होना है। इसके फलस्वरूप या तो विवाहों के दर में कमी हुई है या विवाहों का पूर्ण परित्याग किया गया है। इस सम्बन्ध में विभिन्न वर्गों में अन्तर देखे को मिलता है, सामान्य रूप में निम्न वर्गों की तुलना में उच्च वर्गों में विवाह की औसत उम्र अधिक होती है। पुनः, जब हम योरोप के विभिन्न देशों की विवाह की दरों और विवाह की अवस्थाओं की तुलना करते हैं तो हम पाते हैं कि पूर्वी योरोप, जहाँ की सभ्यता अधिक आदिम है, में विवाह करने की प्रवृत्ति अधिकतम है।

विवाहों की दर की ह्रासोन्मुखी प्रवृत्ति का अन्य स्पष्ट कारण स्त्रियों की बढ़ती हुई आर्थिक आत्म–निर्भरता है। सभ्यता के निम्न स्तरों में स्त्री असहाय होती है, वह पुरुष की सहायता पर निर्भर रहती है, जब कि आधुनिक सभ्यता उसे (स्त्री को) स्वयं के प्रयत्नों से जीविका उपार्जित करने के साधन प्रदान करती है। लेकिन इन आर्थिक कारणों के अतिरिक्त, अन्य ऐसे समान महत्त्वपूर्ण कारण भी हैं, जिन्होंने स्त्रियों और पुरुषों को विवाह न करने के लिए प्रेरित किया है। एक आधुनिक लेखक ने उचित ही लिखा है, ''शिक्षा और संस्कृति के प्रसार, युग के नए अन्वेषणों और अनुसंधानों, व्यापार और भोग तथा सम्पत्ति की वृद्धि के कारण स्त्रियों और पुरुषों की अभिरुचियां अधिक व्यापक और विस्तृत

हुई हैं, इच्छा और आकाँक्षाओं में अशातीत वृद्धि हुई है, तथा तृप्ति और आनन्द के नए रूप प्रदान किए गए हैं। तृप्ति के इन साधनों की वृद्धि से वैवाहिक जीवन से प्राप्त होने वाली सुख–सुविधाओं का महत्त्व अपेक्षाकृत बहुत कम हो गया है। गृहस्थिक जीवन अब उस स्थान की पूर्ति नहीं करता है जो पहले करता था। यह वास्तव में स्त्रियों के लिए कम महत्त्वपूर्ण हो गया है और पुरुषों के लिए भी। एकाकी या अविवाहित जीवन की तुलना में विवाहित जीवन कुछ दृष्टियों से कम लाभप्रद हो गया है। अब अनेक सुख और आनन्द उपलब्ध हो गए हैं, जो अविवाहित जीवन में भी, किसी सीमा तक उत्तम रीति से, उपभोग किए जा सकते हैं। ईसाई देशों के विवाह और तलाक के कानून भी कुछ व्यक्तियों के अविवाहित रहने के लिए उत्तरदायी हैं। हम यह कल्पना कर सकते हैं कि यदि विवाह को अधिक सरलता से भंग किया जा सके तो लोग विवाह अधिक शीघ्रता से करेंगे। इसके अतिरिक्त जहाँ वयस्क पुरुषों की तुलना में वयस्क स्त्रियों की संख्या अधिक है, वहाँ एक विवाह का कानून कौमार्य का एक आवश्यक कारण है। यदि हम विवाह की अवस्था बीस से पचास वर्ष स्थिर करें, तो योरोप में, सौ पुरुष एक सौ तीन या चार स्त्रियों में से चुनाव कर सकते हैं, फलतः एक विवाह के अनिवार्य नियम के कारण सामान्य परिस्थितियों में तीन या चार प्रतिशत स्त्रियाँ आजीवन अविवाहित ही रहकर मरने के लिए रह जाती हैं।

3.

जीवन–संगी का चुनाव : अन्तर्विवाह

समाज विभिन्न रीतियों से विवाह को विनियमित करता है। पहले, यह जीवन–संगी के चुनाव से सम्बन्धित नियम निर्धारित करता है। यद्यपि यह समान्यतः व्यक्ति की अभिरुचि को बहुत छूट देता है, लेकिन यह व्यक्ति को यह भी बताता है कि कुछ अन्य व्यक्ति ऐसे हैं जिनसे स्त्री या पुरुष को विवाह करने की अनुमति नहीं है। समाज में कुछ ऐसे अन्तर्विवाही नियम होते हैं जो किसी विशेष समूह के सदस्यों को किसी ऐसे व्यक्ति से विवाह करने का निषेध करते हैं जो उस समूह का सदस्य नहीं है, तथा बहिर्विवाही नियम के किसी विशेष समूह के सदस्यों को किसी ऐसे व्यक्ति से विवाह करने का निषेध करते हैं जो उसी समूह का सदस्य होता है। विभिन्न समूहों के सन्दर्भ में विचार करने पर ज्ञात होता है कि ये दो प्रकार के नियम किसी भी दशा में परस्पर विरोधी नहीं हैं, एक ही समूह के लोगों में ये दोनों प्रकार के नियम साथ–साथ रहते हैं। वास्तव में सर्वत्र एक ऐसा बाह्य–वृत्त होता है जिसके बाहर विवाह करना निश्चित रूप से निषिद्ध होता है या अनुचित समझा जाता है, तथा एक अन्तःवृत्त होता है जिसके अन्दर किसी को विवाह करने की अनुमति नहीं होती है।

हम अनेक ऐसी प्रजातियों के लोगों के सम्बन्ध में सुनते हैं जो सामान्यतः किसी अन्य प्रजाति के व्यक्ति से विवाह–सम्बन्ध या लैगिंक सम्बन्ध करने से अपने को दूर रखते हैं, या, ऐसे सम्बन्धों को अस्वीकार करते हैं, या वास्तविक रूप से निषेध करते हैं। अनेक कालों में, मध्य अमेरिका में स्पेनियर्डो, मैरीशस में अंग्रेजों, रिउनियन तथा एण्टाइल्स में फ्राँसीसियों, तथा ग्रीनलैण्ड में डेनमार्क के व्यापारियों को आदिवासियों से विवाह करने का कानून द्वारा निषेध किया गया था। हम कह सकते हैं कि सम्भवतः प्रत्येक प्रजाति अपने से भिन्न प्रजाति में, कम से कम अपने से हीन स्तर की प्रजाति में, विवाह करना, यदि अपराध नहीं तो, अपमानजक अवश्य समझती है। यह भावना स्त्रियों के विवाह के सन्दर्भ में विशेष प्रबल होती है। वास्तव में, जब दो भिन्न प्रजातियों के स्त्री–पुरुष परस्पर विवाह करते हैं, तो

अधिकाँश अवस्थाओं में स्त्री की तुलना में पुरुष ऊँची प्रजाति का होता है। एम0डे0 क्वाट्रेफेजेज कहता है, ''स्त्री अपने स्तर से झुकने से इन्कार करती है, पुरुष कम कोमल या भावुक होता है।''

अनेक आदिवासियों में, कबीले या गोत्र अथवा गाँव से बाहर विवाह बहुत कम या कभी नहीं होते हैं। अभ्यस्त पृथक् जीवन तथा दूसरे लोगों के रीति–रिवाजों तथा भाषा के प्रति घृणा की भावना, दोनों मिलकर अन्तर–प्रजातीय विवाह को अस्वीकार या वास्तविक रूप में निषेध करने को बहुत सरलता से प्रेरित करते हैं, और इसी प्रकार अपने किसी सदस्य को अपने से पृथक् न करने की कबीले की इच्छा भी इस सम्बन्ध में सहायक होती है। मोजेज ने जेलोफेहैड की पुत्रियों से ही विवाह करें, जिससे उनका उत्तराधिकारी उनके पिता के परिवार के कबीले में रहे। लेकिन सात कैनानिटिश राष्ट्रों में अन्तर–विवाह के निषेध का कारण धार्मिक था : ''वे अपने पुत्रों को मेरा अनुगामी बनने से विमुख करेंगे, अर्थात् वे दूसरे देवताओं की अर्चना कर सकते हैं।'' इस निषेध का विस्तार इस प्रकार हुआ कि इसके अन्तर्गत समस्त मूर्तिपूजक देश आ गए, तथा इस अध्यादेश की भावना में ही परवर्ती धार्मिक अधिकारियों, इजराइलियों तथा समस्त मूर्तिपूजकों (जिनमें ईसाई भी आते थे) से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने का निषेध हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी में नैपोलियन द्वारा संयोजित वृहत् यूहदी धर्म सम्मेलन द्वारा तथा 1844 में ब्रुन्सविक में हुए यहूदी धर्मशास्त्रवेत्ताओं के सम्मेलन द्वारा यह नियम परिवर्तित किया गया, जिसने निर्णय किया कि यहूदियों तथा एकैश्वरवादी धर्मों को मानने वालों में अन्तर–विवाह वर्जित नहीं है, यदि राज्य के कानून के द्वारा माता–पिता को अनुमति हो कि वे अपनी सन्तानों का यहूदी धर्म में ही पालन कर सकें।

ईसाई धर्म के अनुसार यहूदियों और ईसाइयों में भी विवाह वर्जित था; क्योंकि यहूद ईसा के परम पवित्र नाम से तीव्र घृणा करते थे। वास्तव में, प्रारम्भिक चर्च तो मूर्ति–पूजकों की तुलना में यहूदियों से विवाह सम्बन्ध स्थापित करने का अधिक विरोधी था। 1563 में कैथोलिक और विधर्मियों में विवाह को निश्चित रूप से उस समय वर्जित किया गया, जब ट्रेण्ट परिषद ने उन समस्त विवाहों को अप्रभावकारी (रद्द) माना जो किसी धर्माधिकारी के

समक्ष सम्पन्न न हुए हों, लेकिन धीरे–धीरे पोप मिश्रित विवाहों के लिए अनेक छूटें देने के लिए विवश हुए। प्रोटेस्टेण्ट लोगों में भी पहले इस प्रकार के विवाहों का निषेध था। लेकिन आजकल न तो रोमन कैथोलिक देशों में मिश्रित विवाह नागरिक कानून के विरुद्ध है और न प्रोटेस्टेण्ट देशों में।

मुसलमानों में धर्म अन्तर–विवाहों में बाधक है। कुराने में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है : ''बहुदेववादी स्त्री से उस समय तक विवाह न करो, जब तक वह इस्लाम धर्म स्वीकार न कर ले; लेकिन यह भी कहा गया कि जो स्त्रियाँ अक्षत योनि हैं और किताबिया सम्प्रदाय की हैं या अगुप्त या नैतिक धर्म में विश्वास करती हैं, वे मुसलमानों के लिए कानूनी दृष्टि से ग्राह्य हैं। दूसरी ओर, किसी मुसलमान स्त्री को किसी भी दशा में किसी गैर मुसलमान से विवाह करने की अनुमति नहीं है। हिन्दुओं में अपने से भिन्न जाति में भी विवाह करने का निषेध है। अन्तर्विवाह जाति–व्यवस्था का सार है। इतना ही नहीं कि हिन्दू केवल अपनी जाति की सीमा से बाहर विवाह न करे, अपितु जहाँ जाति उपजातियों में विभक्त है, जैसा कि प्रायः होता है, वहाँ व्यक्ति को सामान्यतः अपनी उपजाति से भी बाहर विवाह नहीं करना चाहिए, यद्यपि कभी–कभी उसे कुछ उपजातियों में विवाह नहीं करने की छूट होती है, लेकिन सब में नहीं; और ऐसी भी उपजातियाँ हो सकती हैं जिनसे विवाह के लिए लड़कियाँ तो ले सकता है, लेकिन उनमें अपनी लड़कियाँ दे नहीं सकता है।

वर्गाय अन्तर्विवाह तो बहुसंख्यक असभ्य और सभ्य लोगों में पाया जाता है। रोम में, प्लेबियन और पैट्रिसियन ईसा पूर्व सन् 445 तक, परस्पर विवाह सम्बन्ध नहीं स्थापित कर सकते थे। ट्यूटन लोगों में, स्वतन्त्र व्यक्ति गुलाम से वैध विवाह नहीं कर सकता था। जब धीरे–धीरे स्वतन्त्र व्यक्तियों में से ही कुलीन लोगों का एक पृथक वर्ग बन गया, तो कुलीनों के परिवार के व्यक्तियों तथा अकुलीनों किन्तु स्वतन्त्र व्यक्तियों के बीच स्थापित विवाह–सम्बन्ध बेनेल समझा जाने लगा था। आज भी, पहले के इस वर्गीय अन्त–विवाह के अवशेष योरोप में देखने को मिलते हैं। लेकिन जैसा हेनरी मेने ने कहा है कि बाह्य या अन्तर्विवाही सीमायें, जिनके अन्तर्गत स्त्री या पुरुष को विवाह करना चाहिए, अधिकांशतः फैशन या पूर्वाग्रह की छत्रछाया में ही स्वीकार की गई हैं। फ्रॉस में अनेक औपचारिक

संस्थाओं के होते हुए अभिजातों और श्रमिकों में विवाह सम्बन्ध, यदि अज्ञात नहीं, तो दुर्लभ अवश्य है।

अनेक अवस्थाओं में वर्गीय अन्तर्विवाह स्पष्ट रूप से प्रजातीय या राष्ट्रीय भेदों के कारण है। सामाजिक भेदकरण विदेशियों की विजय और पराधीनता के परिणामस्वरूप हो सकता है; विजेता लोग श्रेष्ठ या सामन्त–वर्ग के बन जाते हैं तथा विजित लोग सामान्य या दास–वर्ग के हो जाते हैं। नार्मनों की विजय के पूर्व इंगलैण्ड में कुलीन वर्ग में सैक्सन लोग थे, लेकिन बाद में नार्मन लोग हो गए। गॉल के जर्मन विजेताओं के वंशज सहस्रों वर्षों तक फ्राँस की प्रभावशाली प्रजाति के रूप में रहे, और पन्द्रहवीं शताब्दी तक समस्त उच्च कुलीन लोग फ्रैंक या वरगंडी के मूल निवासी थे। सर विलियम रिजवे का मत है कि रोमन पेट्रिसियन मूलतः सेबाइन थे जो रोम के स्वामी बन गए थे, जब कि पलेबियन लोग आदिवासी लिगुरियन थे। यह भी अनुमान लगाया गया है कि हिन्दू–जाति व्यवस्था की उत्पत्ति प्रजातीय भेदकरण से हुई–ऊँची जातियां मुख्यतः भारत के आर्य विजेताओं की वंशज हैं तथा नीची जातियां पराधीन आदवासियों की वंशज है।

आधुनिक सभ्यता न्यूनाधिक रूप में उन दीवारों को छोटा करने या गिराने के लिए प्रयत्नशील है जो समाज में विभिन्न प्रजातियों, राष्ट्रों धर्मावलम्बियों तथा वर्गों के बीच पृथक्करण उत्पन्न करती हैं। अतः इसने (सभ्यता ने) अन्तर्विवाही नियमों की कठोरता को कुछ कम किया है, तथा उस वृत्त का विस्तार किया है जिसके अन्तर्गत स्त्री या पुरुष विवाह कर सकें। आजकल के बन्धन सामान्यतः सभी देशों में शिथिल हो रहे हैं। यह प्रक्रिया मानव इतिहास में बहुत व्यापक महत्त्व की हुई है। जहाँ प्रजातीय या राष्ट्रीय विद्वेष, वर्गीय अहं, या धार्मिक असहिष्णुता में अधिकांशतः उत्पन्न ये अन्तर्विवाही नियम इन भावनाओं के सुदृढ़ करने में सहायक हुए हैं, वहीं यदाकदा होने वाले अन्तर–प्रजातीय या अन्तर–जातीय विवाहों का इसके विपरीत प्रभाव होता है। यदि किसी देश के पुरुष विदेशी स्त्रियों से विवाह करने के नियम बनायें, तो सम्भवतः पृथ्वी पर अधिक शान्ति होगी – सम्भवतः परिवार में कम शान्ति होगी।

4

जीवन–संगी का चुनाव : बहिर्विवाह

अन्तर्विवाह सम्बन्धी नियमों से, जो एक विशेष समूह के लोगों को किसी ऐसे व्यक्ति से विवाह करने को निषेध करते हैं जो समूह का सदस्य नहीं है, हम बहिर्विवाह सम्बन्धी नियमों पर आयेंगे, जो एक विशेष समूह के सदस्यों को इसके किसी अन्य सदस्य से विवाह करने को निषेध करते हैं।

अधिकाँश दशाओं में बहिर्विवाही समूह उन व्यक्तियों से संघटित होता है, जो क ही रक्त या एक ही वंश से सम्बन्धित हैं अथवा अपने को सम्बन्धित समझते हैं; और जहाँ जितना अधिक निकट का सम्बन्ध होता है, वहाँ उतना ही अधिक अन्तर्विवाह के सम्बन्ध में प्रतिबन्ध होता है; कम–से–कम एक ही वंश की शाखा के अन्तर्गत विवाह करना निषिद्ध होता है। समस्त बहिर्विवाह नियमों में अत्यधिक प्रचलित नियम वे हैं जो पुत्र को माता के साथ विवाह करने और पिता को पुत्रियों के साथ विवाह करने का निषेध करते हैं। वास्तव में, ये नियम सम्पूर्ण मानव–जाति में सार्वभौम रूप से प्रचलित प्रतीत होते हैं। यह नियम कुछ कम सार्वभौम नहीं हैं जो ऐसे भाई–बहिनों के विवाह निषध करता है, जो एक ही माता–पिता की सन्तान हैं। इस नियम के जो अपवाद बताये गये हैं, इनमें से अधिकाँश गलत हैं अथवा न्यूनाधिक रूप से सन्देहास्पद हैं; क्योंकि यह प्रायः अनिश्चित होता है कि वे पूर्ण भाई–बहिनों के सम्बन्ध में कहते हैं अथवा उनके सम्बन्ध कहते हैं जिनके माता–पिता में से एक सामान्य है। भाई–बहिनों के विवाहों की परम्परा के अत्यधिक प्रामाणिक उदाहरण सामान्यतः राजाओं या प्रशासक प्रमुखों के परिवारों में पाये जाते हैं, जहाँ इनका पालन स्पष्ट रूप से रक्त की शुद्धता के संरक्षण के उद्देश्य से किया जाता है। पिता पक्ष की आधी बहिन के साथ विवाह की अनुमति बहुत अधिक नहीं दी जाती है। ऐसा प्राचीन एथेंस–वासियों और यहूदियों (सोसाइटों) में अवश्य होता था, अब्राहम ने अपने पिता की पुत्री, आधी बहिन शरह, के साथ विवाह किया था।

पाश्चात्य सभ्यता के विभिन्न देशों में चाचाओं और भतीजियों तथा चाचियों और भतीजों के बीच विवाह सम्बन्ध पूर्णरूप से निषिद्ध हैं; अन्य देशों में कानूनी निषेध लागू किये जा सकते हैं, तथा जर्मनी और अमेरिका के कुछ राज्यों में इस प्रकार के प्रतिबन्ध बिल्कुल नहीं है। योरोप में, कुछ देशों में, भाई–बहिनों के बच्चों के बीच वैवाहिक सम्बन्ध चर्च के कानून के प्रभाव के अन्तर्गत निषिद्ध हैं, अथवा कुछ समय पहले तक निषिद्ध थे। प्रारम्भिक समय में रोमन कैथोलिक चर्च ने उस सात पंक्तियों के अन्तर्गत विवाह करने को निषेध किया, जो करीब–करीब सात पीढ़ियों के बराबर हैं, किन्तु तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में निषिद्ध पंक्तियाँ चार कर दी गई, अर्थात्, भाई की तीसरी पीढ़ी के बाद की सन्तानों के साथ विवाह करने की अनुमति दी गई और तब से इस नियम में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। तथापि इसके उल्लंघन की केवल अनुमति ही नहीं प्राप्त रही है, अपितु व्यवहार में इसका बहुत अधिक प्रचलन भी रहा है। सैद्धान्तिक रूप से, सुधारक लोग मोजेक कानून की निषिद्ध पंक्तियों में वापस चले गये।

रक्त–सम्बन्धियों के बीच होने वाले विवाह– सम्बन्धों के निषेधों के अतिरिक्त, कुछ अन्य निषेध भी हैं, जो अप्रत्यक्ष सम्बन्धियों के बीच होने वाले विवाहों पर लागू होते हैं। कैथोलिक चर्च मृत पत्नी की बहिन के साथ विवाह करने का निषेध करता है। इस प्रकार के विवाह इंगलिश चर्च के कैनन कानून द्वारा अनुचित घोषित किये गये हैं। जैसा यह सर्वविदित है कि अनेक निरर्थक प्रयत्नों तथा अत्यधिक कठोर विरोध का सामना करने के पश्चात् मृत पत्नी की बहिन के साथ विवाह को वैध करने के लिये संयुक्त राज्य में 1907 में अधिनियम पारित किया गया था। हम लोगों की अपेक्षा आधुनिक सभ्यता से प्रभावित लोगों में बहिर्विवाह नियम अधिकाँशतः अधिक व्यापक हैं। इन लोगों में, ये नियम प्रायाः गोत्र या वर्ग के समस्त सदस्यों को निर्देशित करते हैं, और सामान्यतः इनमें वे नियम भी जुड़े रहते हैं जिनके द्वारा दूसरे गोत्र या वर्ग के ऐसे सदस्यों के साथ विवाह करना निषेध है, जो निकट के सम्बन्धी होते हैं। आस्ट्रेलिया के आदिवासियों के बहिर्विवाही नियम विशेष रूप से जटिल हैं। उनकी अधिकाँश जनजातियाँ दो, चार या आठ वैवाहिक वर्गों या उपवर्गों में विभक्त हैं, जिनमें से प्रत्येक वर्ग या उपवर्ग का सदस्य अपने वर्ग या उपवर्ग से

बाहर अपना पति या अपनी पत्नी चुनने के लिये विवश है, तथा इनमें से अनेक जनजातियों के व्यक्ति केवल एक विशेष समूह में ही विवाह कर सकते हैं। इतना ही नहीं, आस्ट्रेलिया की जितनी जनजातियाँ हमें मालूम हैं, उनमें से अधिकाँश में केवल वर्ग बहिर्विवाह की ही पद्धति नहीं है, बल्कि गोत्र बहिर्विवाह की प्रथा है। आस्ट्रेलिया के आदिवासियों में बहिर्विवाह के नियम बहुत कठोरता पूर्वक पालन किये जाते हैं, या, कुछ दिनों पूर्व पालन किये जाते थे। इन नियमों को भंग करने वालों को मृत्युदण्ड दिये जाने की व्यवस्था है। यही दण्ड अनुचित काम–सम्बन्धों के अपराधियों को भी दिया जाता है। आस्ट्रेलिया तथा अन्य स्थानों में स्थानीय बहिर्विवाह के उदाहरण मिलते हैं जिनमें एक ही झुण्ड या गाँव के व्यक्तियों का परस्पर विवाह करना निषिद्ध होता है, भले ही वे रक्त द्वारा सम्बन्धित न हों।

बहिर्विवाह के नियमों की व्याख्या के लिए अनेक प्रयत्न किए गए हैं। स्त्री शिशु–हत्या की आदिकालीन आदत, अपनी पत्नियों में विजय का चिन्ह रखने की आदिम मनुष्यों की निर्थक इच्छा, अन्तर–प्रजनन के दुष्प्रभाव का अनुभव, आदिम स्वच्छन्दता के उपकल्पनात्मक काल में उत्पन्न अपहरण द्वारा विवाह, क्रय द्वारा विवाह, अन्धविश्वास कि अगम्यागमन फसल को हानि पहुँचाता है, खाने योग्य पशुओं की वृद्धि रोकता है और समूह की स्त्रियों को बाँझ करता है, गोरिल्लों की तरह के उनके पूर्वजों की भयानक ईर्ष्या, जो अपने बच्चों को तरुणावस्था में पहुँचते ही घर से निकाल देते थे, आदि इसके (बहिर्विवाह के) कारण बताये गये हैं। मेरे मत से इन समस्त सिद्धान्तों में से प्रत्येक के विरुद्ध गम्भीर आपत्तियाँ उठाई जा सकती हैं तथा कुछ अन्य ऐसी आपत्तियाँ हैं, जो इन सबके विरुद्ध उठाई जा सकती हैं। ये सब सिद्धान्त बहिर्विवाही नियमों को अति प्राचीनकाल के सामाजिक अवशेष के रूप में मानते हैं। ये सब यह कल्पना करते हैं कि ये नियम उन परिस्थितियों में उत्पन्न हुए हैं जो अब नहीं हैं, अथवा, उन विचारों से उत्पन्न हुए हैं, जो कुछ ही जंगली लोगों में पाये गए हैं अथवा कहीं नहीं पाये गए हें। तब क्या वास्तव में यह विश्वास करना सम्भव है कि विवाहों पर लगने वाले प्रतिबन्ध किसी उद्देश्य की पूर्ति किए बिना ही चले आ रहे हैं? यह समझ लेना चाहिए कि बहिर्विवाह के नियम अपरिवर्तित नहीं रहे हैं; बल्कि इसके विपरीत, वे एक ही स्कन्ध (स्टाक) के लोगों में भिन्न–भिन्न हैं, और हम

जानते हैं कि योरुप में कुछ शताब्दियों के अन्तर्गत चर्च की स्वीकृति मिलने के बावजूद भी ये नियम बहुत अधिक परिवर्तित हो गये हैं। इससे सिद्ध होता है कि ये नियम अपरिवर्तनीय नहीं हैं, बल्कि जीवित सामाजिक सावयव (आर्ग्रेनिज्म) के अंग हैं, जो परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित हो सकते हैं।

फिर भी, इन सिद्धान्तों में यह भाव निहित है कि घर को नियम, रीतिरिवाज, शिक्षा के द्वारा व्यभिचार से मुक्त रखा जाये। किन्तु यदि सामाजिक निषेध निकट सम्बन्धियों को काम–सम्बन्धों से रोक भी सकते हैं, तो वे इस प्रकार के सम्बन्धों की इच्छा को नहीं रोक सकते हैं। काम की नैसर्गिक प्रवृत्तियों को नियमों के द्वारा नहीं बदला जा सकता है। मुझे सन्देह है कि समलिंगी–मैथुन के विरुद्ध बनाये गये समस्त कानून, यहाँ तक कि बड़े कठोर कानून, विषमलिंगी–मैथुन की प्रवृत्तियों के साथ जन्म लेने वाले व्यक्ति की इस विचित्र इच्छा का कभी अन्त कर सकते हैं। तथापि, निकट सम्बन्धियों से काम–सम्बन्ध स्थापित करने के विरुद्ध बनाए गये नियम व्यक्तिगत भावनाओं के प्रतिरोधी प्रायः नहीं माने जाते हैं। मेरी जानकारी में, माता–पिता और बच्चों, भाइयों और बहिनों के बीच के विवाह का निषेध करने वाले कानूनों के उन्मूलन के लिए कभी प्रयत्न नहीं किए गये हैं, वे विवाह के बोल्शेविक कानून तक में वर्तमान हैं, जिसमें विवाह के सम्बन्ध में अभूतपूर्व स्वतंत्रता प्रदान की गई है। इसका सबसे सरल कारण यह है कि साधारण अवस्थाओं में उन कार्यों के लिए इच्छा ही नहीं होती है जो कानून द्वारा निषिद्ध है। सामान्यतः, जो लोग बचपन से साथ–साथ रहते चले आ रहे हैं, उनमें एक–दूसरे के प्रति वासनात्मक भावनाओं का उल्लेखनीय अभाव देखने को मिलता है। इतना ही नहीं, अन्य अनेक अवस्थाओं की तरह, इस स्थिति में भी, जब काम–क्रिया के सम्बन्ध में ध्यान दिया जाता है, तो लैंगिक उदासीनता के साथ विरक्ति या पराङ्मुखता की निश्चित भावना संलग्न मिलती है। मेरा विश्वास है कि जब पर्याप्त तीव्रता के साथ लैंगिक सम्बन्ध का विचार मस्तिष्क में आता है, तो यह स्थिति प्रायः होती है, और इच्छा व्यक्त होने में असफल हो जाती है। उदाहरण के लिए, ऐसी परिस्थितियों में एक वृद्ध और कुरूप स्त्री अधिकाँश पुरुषों के लिए लैंगिक दृष्टि से विकर्षक होगी, तथा अनेक पुरुष विपर्यों के लिए, लैंगिक इच्छा की वस्तु के रूप में कोई

स्त्री केवल उदासीनता ही नहीं अपितु घृणा का विषय है। जो वितृष्णाएँ शीघ्रता से अनुभव की जाती हैं, वे नैतिक अस्वीकृति तथा निषेधात्मक प्रथाओं या कानूनों की ओर अग्रसर करती हैं। मैं इन तथ्यों को बहिर्विवाही निषेधों का आधारभूत कारण मानता हूँ। नियमानुसार, जो व्यक्ति बचपन से अत्यन्त निकट साथ–साथ रह रहे हैं, वे निकट सम्बन्धी हैं। अतः उनकी एक–दूसरे के प्रति लैंगिक वितृष्णा की भावना, निकट के रक्त–सम्बन्धियों के बीच के काम–सम्बन्धों को निषेध करने वाले कानूनों और रिवाजों में अपने को व्यक्त करती है। कानून के अन्तर्गत सामान्य और सुपरिभाषित दशायें आती हैं, और इस कारण से ऐसे व्यक्तियों के सामाजिक सम्बन्ध, रक्त–सम्बन्ध के रूप में परिभाषित होते हैं, जो प्रायः निकट के सम्बन्धी होते हैं। यह केवल निकट–सम्बन्धियों के बीच काम–सम्बन्ध स्थापित करने के निषेधों के लिए ही सत्य नहीं है, बल्कि रक्त–सम्बन्ध से सम्बन्धित अनेक अधिकारों और कर्त्तव्यों के लिए भी सत्य है।

जिस प्रकार की भावना के अस्तित्व की ओर संकेत किया गया है, वह विश्वव्यापी है। प्लेटो का कहना था कि अलिखित कानून, यथासम्भव पर्याप्त रूप में, माता–पिता को बच्चों के साथ व्यभिचार करने तथा भाइयों को बहिनों के साथ काम–सम्बन्ध स्थापित करने से रक्षा करते हैं तथा इस प्रकार की बातों के लिए उनके मस्तिष्क में बिल्कुल विचार तक नहीं आने देते हैं। जब मैंने मोरक्को में ग्रेट एटलस के अपने अध्यापक बरबर से पूछा कि क्या उसके कबीले में चचाजात भाई–बहिनों में विवाह प्रचलित थे? उसका उत्तर था : ''तुम ऐसी लड़की को कैसे प्यार कर सकते हो, जिसे तुमने हमेशा देखा है।'' विश्व के विभिन्न भागों के आदिवासियों ने इसी आशय के मत व्यक्त किए हैं। फिनलैण्ड में सहशिक्षण–संस्था के प्रधानाध्यापिका पद पर बहुत दिनों तक आसीन रहने वाली महिला से यह रोचक सूचना प्राप्त हुई है कि जो लड़के–लड़कियाँ एक साथ एक स्कूल में शिक्षित होते हैं, उनमें वासनात्मक प्रेम सम्बन्धी भावना का स्पष्ट रूप से अभाव रहता है। एक बार एक नवयुवक ने उस महिला को आश्वासन दिया कि न तो वह और न उसका कोई मित्र अपनी सहपाठिन के साथ विवाह करने का कभी विचार करेगा, तथा मैंने ऐसे लड़के के बारे में सुना था जिसने अपने स्कूल की लड़कियों तथा अन्य स्कूल की लड़कियों, जिनको वह

''वास्तविक'' लड़कियाँ कहता था, में बहुत अन्तर किया था। अन्य लोगों का मत है कि लड़के स्कूल की छोटी कक्षा की लड़कियों के प्रति वासनात्मक अभिव्यक्ति कर सकते हैं, किन्तु अपनी कक्षा की लड़कियों के साथ नहीं।

निचले पशुओं में भी इस बात के संकेत मिलते हैं कि साथ—साथ रहने वाले पशुओं की काम की नैसर्गिक प्रवृत्ति उत्तेजित होने में असफल रहती है और वे अपनी तुष्टि के लिए अपरिचित पशु की खोज करते हैं। पक्षियों का अधिकारी ज्ञाता मार्क्यूस डी ब्रिले कहता है कि ''एक ही घोसलें की दो चिड़ियाँ बहुत कम जोड़ा रखती हैं, क्योंकि वे एक—दूसरे से भली प्रकार परिचित होती हैं, और ऐसा प्रतीत होता है कि वे एक—दूसरे के लिंग—भेद से अपरिचित होती हैं और वे उन परिवर्तनों द्वारा अपने सम्बन्धों में अप्रभावित रहती हैं, जिनसे वे वयस्क बनती हैं।'' मधुमक्खी कभी अपने छत्ते में गर्भाधान नहीं करती है, बल्कि इसके लिए वह बाहर उड़कर जाती है। पंख वाली चीटियों में 'विवाह—उड़ान' (मैरिज फ्लाइट) करना नर और मादा दोनों के लिए बहुत सामान्य है; उनके झुण्ड दूसरे झुण्डों में, यहाँ तक कि के वंशानुगत (हेरेडिटरी) शत्रुओं से मिल जाते हैं, और वे परस्पर प्रेमालाप करते हैं तथा आनन्द उठाते हैं। पालतू पशुओं के सम्बन्ध में भी देखा गया है कि उनके एक साथ रहने से उनकी काम—प्रवृत्ति पर निष्क्रियात्मक प्रभाव पड़ता है और इसके लिए अपरिचित पशु ही उपयुक्त होता है।

असंख्य तथ्य यह बताते हैं कि बहिर्विवाही नियम किस प्रकार से एक साथ रहने की आदत से सम्बन्धित हैं। जैसा पहले कहा जा चुका है, एक ही समूह के समस्त व्यक्तियों में परस्पर विवाह—सम्बन्ध निषिद्ध हो सकता है, चाहे वे रक्त से सम्बन्धित हों या न हों। जहाँ पिता पक्ष की आधी—बहिनों के साथ विवाह की अनुमति होती है, वहाँ एक ही माता के बच्चों की तरह विभिन्न माताओं के बच्चे पारस्परिक सम्पर्क में नहीं लाए जाते हैं। बहुपत्नी (पालीजिनस) वाले परिवारों में प्रत्येक पत्नी और उसके बच्चे एक छोटा—सा समूह निर्माण करते हैं, जो प्रायः पृथक् झोपड़ों में रहते हैं। इन विभिन्न उपपरिवारों के सदस्यों में परस्पर प्रतिस्पर्धा और घृणा कम नहीं होती है। एथेंस के उस कानून के सन्दर्भ में, जिसने पुरुष को पिता—पक्ष की आधी बहन से विवाह करने अनुमति दी थी, ह्यूम ने यह टिप्पणी दी थी,

''उसकी विमाता और उसके बच्चे उससे इतना अधिक पृथक् थे, जितना किसी अन्य परिवार की स्त्री।'' माण्टेस्क्यू का बहुत पहले यह पर्यवेक्षण था कि उन लोगों के चचाजात भाई–बहिनों में विवाह करना वर्जित था जिनके बच्चे एक ही घर में साथ–साथ रहते हों। ग्रीक लोगों में चचाजात भाई–बहिनों में परस्पर विवाह की अनुमति थी, जब कि रोमन लोगों में अधिक दूर से सम्बन्धित व्यक्तियों के बीच एक विवाह–सम्बन्ध निषिद्ध था। यह विभेद निस्सन्देह इस तथ्य के कारण था कि रोम की अपेक्षा ग्रीस में पारिवारिक भावना अधिक निर्बल थी, जबकि प्रारम्भिक समय में पुत्र विवाह के पश्चात् भी पिता के घर में रहा करता था, जिससे पिता–पक्ष के चचाजात भाई–बहिन भाइयों और बहिनों के रूप में पाले–पोसे जाते थे। तदुपरान्त, अनेक परिवार सामान्य गृहस्थी से पृथक् कर दिए गये। हिन्दुओं तथा अनेक दक्षिणी स्लाव लोगों में, उनके व्यापक विवाह–निषेधों तथा उनकी बड़ी गृहस्थियों के बीच परस्पर स्पष्ट सम्बन्ध है, और अनेक सरल लोगों में साथ निकट रहने तथा निषिद्ध पक्षों के सम्बन्ध के बीच हमें इसी प्रकार का अन्तर–सम्बन्ध देखने को मिलता है। फिर भी, वस्तुतः बहिर्विवाही गोत्र या विवाह–वर्ग के सदस्य प्रायः एक साथ ही स्थान में नहीं रहते हैं। यह इस तथ्य का स्वाभाविक परिणाम है कि बचपन से एक साथ रहने वाले व्यक्तियों के बीच के काम–सम्बन्धों के प्रति पराङ्मुखता को रक्त से सम्बन्धित व्यक्तियों के विवाहों के विरुद्ध निषेधों में व्यक्त किया गया है। यद्यपि बहिर्विवाही नियम मूलतः रक्त–सम्बन्ध से सम्बन्धित हैं, लेकिन इन नियमों के अन्तर्गत उन सम्बन्धियों को भी ले लिया जाता है जो साथ–साथ नहीं भी रहते हैं – ठीक उसी प्रकार जैसे यद्यपि सामाजिक अधिकार और कर्त्तव्य अन्ततः बहुत निकट रहने पर निर्भर होते हैं, लेकिन स्थानीयता का बन्धन टूटने पर भी इनमें विलुप्त न होने की सुदृढ़ प्रवृत्ति रहती है। उदाहरणार्थ, गोत्रीय बहिर्विवाहिता में हमें इसका प्रतिरूप देखने को मिलता है, जिसमें एक गोत्र के सदस्य साथ–साथ न भी रहें, तो भी समस्त सदस्यों को एक अनिवार्य कर्त्तव्य के रूप में रक्त–बैर का ध्यान रखना पड़ता है, अर्थात् कोई व्यक्ति किसी दूर रहने वाले समगोत्री सदस्य से विवाह नहीं कर सकता है।

इस प्रक्रिया में सामान्य नाम का प्रभाव निस्सन्देह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। चूँकि सगोत्रता या रक्त–सम्बन्ध का वर्णन नामों की प्रणाली के माध्यम से किया जाता है, इसलिए नाम सगोत्रता या रक्त–सम्बन्ध को व्यक्त करते हैं। यह प्रणाली स्वभावतः एक पक्षीय होती है। यह या तो केवल पिता–पक्ष अथवा केवल माता–पक्ष की वंशावली का विवरण रखेगी, लेकिन किसी भी दशा में एक साथ दोनों पक्षों का विवरण नहीं रख सकती है, और जिस वंश–शाखा को इस प्रकार के वृत्तों द्वारा नहीं रखा जा सका है, जब कि इसे सम्बन्ध की शाखा के रूप में स्वीकार भी कर लिया गया है, तो न्यूनाधिक रूप में इसकी उपेक्षा हो गई है, अथवा इसे शीघ्र ही विस्मृत कर दिया गया है। अतएव सामान्यतः गोत्रता से सम्बन्धित सामाजिक अधिकारों और कर्त्तव्यों की तरह, विवाह की निषिद्ध पीढ़ियाँ एक पक्ष की अपेक्षा दूसरे पक्ष की ओर बहुत अधिक आगे फैल जाती हैं, यह भी ध्यान रखना चाहिए कि आदिवासियों के विचार के अनुसार सम्बन्धित व्यक्तियों को परस्पर आबद्ध रखने के लिए नाम स्वयं एक रहस्यात्मक कड़ी के रूप में कार्य करता है।

यहाँ पर यह कहना उचित है कि मेरे बहिर्विवाह की उत्पत्ति के सिद्धान्त को बहुत अधिक आलोचनाओं का सामना करना पड़ा है। आलोचनाओं में उठाई गई आपत्तियों के उत्तर मैंने अपनी वृहत् पुस्तक 'हिस्ट्री आफ मैरिज' (विवाह का इतिहास) में दिए हैं। मनोविश्लेषकों ने मेरे सिद्धान्त को आश्चर्यजनक कहा था। डा0 फ्रायड ने यह प्रतिपादित किया है कि यह सिद्धान्त जिस मनोवैज्ञानिक कल्पना पर आधारित है, उसका मनोविश्लेषण के परिणामों से पूर्ण रूप से खण्डन हो गया है, और इसके विपरीत मनोविश्लेषण ने तो यह दिखाया है कि ''युवक व्यक्ति के सबसे पहले लैंगिक झुकाव नियमित रूप से सगोत्रगामी हैं, तथा ये दमित झुकाव ऐसा कार्य करते हैं कि जिनका बाद की उन्माद की अवस्था में बहुत मुश्किल से अधिमूल्याँकन किया जा सकता है।'' जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मुझे सन्देह है कि क्या लैंगिक नैसर्गिक प्रवृत्ति के सामान्य प्रकटीकरण को समुचित रूप से समझने के लिए उन्मादग्रस्त व्यक्तियों का अध्ययन सुरक्षित पदप्रदर्शक माना जा सकता है, और डा0 फ्रायड की पारिभाषिक शब्दावली में ''लैंगिक झुकाव'' (सेक्सुअल इंक्लीनेशन) में वास्तविक लैंगिक सम्बन्ध की इच्छा से पूर्णतयः भिन्न मानसिक अवस्था के लिए संकेत हो

सकता है। एक अन्य सुपरिचित मनोविश्लेषक डा0 जुंग कहता है, सगोत्रगमन की इच्छा, जैसी आदिम मानव–समाज में थी, के समर्थन में मैं बहुत थोड़ा योगदान करने में समर्थ हूँ।'' डा0 जोन्स के अनुसार, मनो–विश्लेषण यह निर्देश करता है कि सगोत्रगमनता के प्रति सार्वभौम झुकाव का अस्तित्व वास्तव में होता है, जिसका अधिकाँशतः अचेतन रूप में दमन क्यों हुआ है? इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न का संतोषजनक उत्तर मुझे मनोविश्लेषकों की कृतियों में नहीं मिला है, यह निश्चित ही अत्यधिक अप्रामाणिक दावा है कि ''सगोत्रगमन की करीब–करीब सार्वभौम वीभत्सता तथा उन असाधारण जटिल तथा भीषण कानूनों पर प्रचुर प्रकाश डाला गया है जो इसके रोकने के उद्देश्य से विश्व के अनेक भागों में खोजे गए हैं। पर किन कारणों से जटिल और भीषण कानून खोजे गए हैं तथा यह किसी समय सार्वभौम रूप से अनुभव की जाती थी, तो ये कानून केवल इस विशेष अवस्था में आन्तरिक काम–इच्छा के करीब–करीब पूर्ण रूप से दमित करने में कैसे समर्थ हुए, लेकिन अन्य अवस्थाओं में ऐसा क्यों नहीं कर सके? कुछ हजार सभ्य किन्तु उन्मादी व्यक्तियों से सम्बन्धित मनोविश्लेषणात्मक अनुसन्धानों, तथा उन पुराण कथाओं और सृष्टि उत्पत्ति के सिद्धान्तों (जिनकी अनेक व्याख्यायें की जाती हैं) से निकाले गए निष्कर्षों के द्वारा आदिम मनुष्य में चेतन सगोत्रगमन की इच्छा के अस्तित्व की स्थापना करने के पूर्व उक्त प्रश्नों के उत्तर दिए जाने चाहिए।

एक और महत्त्वपूर्ण प्रश्न अभी उत्तर की अपेक्षा रखता है : जो व्यक्ति बचपन से निकट रहते आए हैं, उनमें परस्पर काम–सम्बन्धों के झुकाव के अभाव की व्याख्या हम कैसे करेंगे? मेरा विश्वास है कि इसका गहरा जैविकीय आधार है; प्राणियों के अस्तित्व के लिए काम की नैसर्गिक प्रवृत्ति इतने अधिक महत्त्व की है कि इसकी स्वाभाविक विशेषताओं की कोई सन्तोषजनक व्याख्या इसकी अपनी विशेष उपयोगिताओं में खोजनी चाहिए। पशुओं और वृक्षों से सम्बन्धित प्रचुर तथ्य इस बात में कोई सन्देह करने का अवसर नहीं देते हैं कि वृक्षों में आत्म–गर्भाधान तथा पशुओं में निकट का अन्तः–प्रजनन, समग्ररूप में, जात (स्पीशीज) के लिए कम–के–कम इस दृष्टि से तो हानिप्रद है ही कि ऐसे सम्बन्धों के उत्पादों में, माता–पिता दोनों की रोग सम्बन्धी प्रवृत्तियों का संचयन होता है और

फलस्वरूप वृद्धि होती है। यहाँ हमें काम की नैसर्गिक प्रवृत्ति की उस विशेषता की व्याख्या मिल जाती है जिसके द्वारा मैंने बहिर्विवाही नियमों की उत्पत्ति बतायी है। हम यह मान सकते हैं कि इसमें तथा अन्य अवस्थाओं में प्राकृतिक प्रवरण ने काम किया है, तथा इसके विनाशात्मक प्रवृत्तियों का निरसन और उपयोगी विभिन्नताओं का संरक्षण करके काम की नैसर्गिक प्रवृत्ति को ऐसा रूपान्तरित किया है जिससे जात (स्पीशीज) की आवश्यकाताओं की पूर्ति हो सके। यह तर्क नहीं करना चाहिए कि इस प्रकार के प्रवरण को उत्पन्न करने में चचेरे या ममेरे भाई–बहिनों के विवाह बहुत ही कम हानिप्रद सिद्ध हुए हैं। जैसा मेरा विश्वास है, यदि हमारे आदिम मानव या बानर सदृश जनकों में सामाजिक इकाई के रूप में माता–पिता तथा बच्चों से युक्त परिवार विद्यमान थे, तो लैंगिक प्रवृत्ति के जिस वैचित्र्य के सम्बन्ध में मैं कह रहा हूँ, वह निकटतम सम्बन्धियों के लैंगिक सम्बन्धों की हानियों के फलस्वरूप विकसित हुआ है। लेकिन यदि इसे एक बार अर्जित कर लिया गया है, तो यह प्रवृत्ति स्वभावतः उन दूर के सम्बन्धियों या असम्बन्धित व्यक्तियों में भी देखने को मिल सकती है जो बचपन से बहुत निकट सम्पर्क में रह रहे हैं, यद्यपि उनका सम्मिलन हानिप्रद नहीं हो सकता है। विचारों और भावनाओं के सम्पर्क के द्वारा यह प्रवृत्ति बहुत सरलता से ऐसे व्यक्तियों के लैंगिक सम्बन्धों का भी निषेध कर सकती है जो साथ–साथ बिल्कुल ही नहीं रहे हैं।

5

अपहरण द्वारा विवाह

अब आगे हम विवाह करने के विविध रूपों पर विचार करेंगे। इनमें एक रूप यह है कि पुरुष–स्त्री को स्वयं उसकी तथा उसके निकटतम सम्बन्धियों की स्वीकृति के बिना शक्ति द्वारा ले जाता है। इसे अपहरण–विवाह (Marriage by capture) कहते हैं।

पत्नी प्राप्त करने की यह विधि विश्व के अनेक भागों में असभ्य लोगों में पायी गई है। अन्य स्थानों की अपेक्षा आस्ट्रेलिया में यह विधि प्रायः देखने को मिलती है। ''किसी समय आकस्मिक रूप से एक दल संगठित होकर किसी पड़ाव पर आक्रमण करेगा, उसके पुरुषों की हत्या करेगा, और स्त्रियों का अपहरण करके उन्हें अपने अधिकार में कर लेगा। इस सामूहिक अपहरण के समान ही किसी एक स्त्री के बल पूर्वक अपहरण की भी घटनाएँ होती हैं। ऐसे अवसरों पर यदि स्त्री प्रतिरोध करेगी तो वह क्रूरतापूर्वक पीटी जाएगी।''

अपहरण विवाह का अस्तित्व सेमेटिक और इण्डोयोरोपीय दोनों ही लोगों में रहा है। प्राचीन हिब्रू लोगों ने सैनिक वर्ग के सदस्यों को युद्ध में प्राप्त विदेशी स्त्रियों से विवाह करने की अनुमति दे रखी थी, यद्यपि उनका कानून विजातीय लोगों से अन्तर–विवाह का निषेध करता था। पौराणिक हिन्दू विधायक मनु के कानून के अनुसार विवाह सम्पन्न करने की आठ वैध विधियों में एक अपहरण विधि भी थी, जिसमें ''बाधा डालने वालों को मार कर, घायलकर, घर के दरवाजे तोड़कर रोती बिलखती हुई कन्या का बलपूर्वक हरण होता है।'' इस विधि से विवाह करने की अनुमति, धार्मिक परम्पराओं द्वारा, क्षत्रिय जाति को दी गई थी। हमें यह बताया गया है कि अपहरण–विवाह किसी समय सम्पूर्ण ग्रीस में प्रचलित था, और इसके अवशेष प्रारम्भिक रोमन लोगों की परम्पराओं में संरक्षित रहे हैं। प्राचीन ट्यूटन प्रायः पत्नियों के लिए स्त्रियों का अपहरण करते थे; उनके सबसे पहले के लिखित कानूनों में ''बलात्कार द्वारा विवाह'' को निस्सन्देह दण्डनीय अपराध बताया गया था, लेकिन फिर भी यह विवाह तो है ही। पूर्वकाल में स्लाव लोगों में अपहरण–विवाह ही तो थे, और

अनेक दक्षिणी स्लाब लोगों में उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ या पश्चात् भी ऐसे विवाह होते थे। हाई अल्बानियाँ में तो आज भी लड़कियों का बलपूर्वक अपहरण प्रायः हुआ करता है।

इसके साथ–साथ यह बात भी है कि यद्यपि अपहरण विवाह की विधि विश्व के अनेक भागों में पाई जाती है, लेकिन यह सुनने में नहीं आया कि कहीं भी विवाह करने की स्वाभाविक या सामान्य विधि के रूप में यह प्रथा प्रचलित हो। यहाँ तक कि आस्ट्रेलिया के आदिवासियों के सम्बन्ध में भी यह कहा जाता है कि उनमें भी पत्नी प्राप्त करने की यह विधि केवल अपवाद के रूप में अथवा कदाचित् ही उपयोग की जाती है। वास्तव में, इस विधि में द्वन्द्व या संघर्ष उत्पन्न होता है, इसलिए जनजातियाँ प्रायः स्वयं ही इस प्रथा के विरोध में हो जाती हैं। सामान्य रूप में, अपहरण–विवाह का व्यवहार या तो युद्ध की दुर्घटना के रूप में होता है अथवा जब सामान्य विधि से पत्नी प्राप्त करना दुष्कर या असुविधाजनक होता है। इस विधि को हम उन जंगली लोगों में पाते हैं, जो परस्पर सम्बन्धित व्यक्तियों द्वारा संगठित छोटे–छोटे समूहों में रहते हैं, जैसे– फ्यूजी तथा ब्राजील की विभिन्न छोटी जनजातियाँ; आस्ट्रेलिया की जनजातियाँ आदि। आस्ट्रेलिया की जनजातियों में, जहाँ अनेक नवयुवकों को अनेक कारणों से विवाह कर पाना बहुत दुष्कर होता है, और अनेक ऊँचे प्रकार के लोगों में भी, जहाँ क्रय–विवाह पद्धति होती है, वहाँ लड़की के मूल्य में कमी कराने अथवा मूल्य बिल्कुल न देने की दृष्टि से क्रय द्वारा विवाह करने के स्थान पर अपहरण को स्थान दिया जाता है। प्रथा के अनुसार यह आवश्यक हो सकता कि लड़की के माता–पिता से बाद में मामला सुलझा लिया जाए, अतः ऐसी स्थितियों में विवाह करने के लिए संविदा करने की अपेक्षा अपहरण करना पहले आवश्यक है। यह प्रायः माना गया है कि किसी समय असभ्य लोगों में अपहरण पत्नी प्राप्त करने की स्वाभाविक माध्यम था, लेकिन इस पर विश्वास करने का हमारे पास कोई कारण नहीं है। जंगली लोग सदा अपने पड़ोसियों के प्रति बैर भाव नहीं रखते हैं; अनेक जनजातियाँ ऐसी हैं जिनमें युद्ध अपवाद के रूप में ही होते हैं और कुछ के सम्बन्ध में तो यह भी कहा जाता है कि उनमें युद्ध कभी नहीं हुआ है। यह बात नितान्त असम्भव प्रतीत होती है कि कोई

ऐसा समय था, जब परिवारों में ऐसे मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का अस्तित्व नहीं था, जिससे उनमें परस्पर अन्तर–विवाह हो सकते।

अपहरण द्वारा विवाह का आदिम अवस्था के सिद्धान्त के सम्बन्ध में यह माना जाता है कि इसने अति व्यापक रूप से फैली हुई उन कुछ प्रथाओं से समर्थन प्राप्त किया, जिनकी अतीत कालीन अपहरण के अवशेषों के रूप में व्याख्या की गई। लेकिन जिस आशय से इन प्रथाओं की व्याख्या की जाती है, वह आशय उनसे सिद्ध नहीं होता है; क्योंकि सहज ही में उनकी अन्य रूप में व्याख्या की जा सकती है। सर्वप्रथम ऐसे बहुसंख्यक उदाहरण प्राप्त होते हैं जिनमें वर या वर–पक्ष और कन्या के परिवार के बीच विवाह–संस्कार के अंग के रूप में रस्मी लड़ाई होती है, अथवा वर, या वर–पक्ष के समक्ष कन्या–पक्ष के लोग कोई प्रतिरोध प्रस्तुत करते हैं। मोरक्को के कुछ जिलों में, जब वर–पक्ष के लोग कन्या लेने के लिए आते हैं, तो उनकी तरफ पत्थर फेंके जाते हैं। पंजाब में, कहीं–कहीं, जब बरात लड़की के घर की ओर आती है, तो मार्ग में उसको कन्या की सहेलियों और सम्बन्धियों का दल मिलता है, जो बरातियों के मार्ग को रोक देता है, और तब आगे बढ़ने के पूर्व दोनों पक्ष में रस्मी लड़ाई होती है और अच्छे खासे मोटे डंडों से बरातियों पर मार पड़ती है। योरोप के अनेक देशों में बारात के जुलूस के मार्ग में अवरोध उपस्थित करने अथवा जुलूस को रोक देने की बहु प्रचलित प्रथा है। इस प्रथा को भी अनेक लेखकों ने विवाह की अपहरण–विधि का अवशेष माना है। अवरोध की प्रथा में कभी–कभी डंडे या हथियार भी वर की सवारी के सामने फेंक दिए जाते हैं, लेकिन अधिकाशतः मार्ग में रस्सी या फूलों की डोर ही बाधी जाती है और वर को निष्कृति–मूल्य चुकाना पड़ता है, जिससे बारात को आगे बढ़ाने की अनुमति मिल सकें। बारात के जुलूस के सामने रस्सों द्वारा अवरोध उत्पन्न करने की प्रथा ग्लूकेस्टरशायर और वेल्स में पायी जाती है। अट्ठारहवीं शताब्दी तथा किसी सीमा तक अभी हाल में भी, वेल्स में वर को अधिक गम्भीर अवरोध का सामना करना पड़ता था। विवाह के दिन प्रातःकाल वर अपने मित्रों सहित कन्या–पक्ष से कन्या को माँगता था। कन्या के मित्र इन्कार करते, फलतः दोनों पक्षों में बनावटी लड़ाई होने लगती। कन्या अपने रक्त सम्बन्धियों के पीछे घोड़े पर सवार

होती। लड़ाई छिड़ते ही लड़की के सम्बन्धी उसे लेकर भागते, तो वर तथा उसके मित्र जोर–जोर से चिल्लाते हुए उसका पीछा करते, और जब वे तथा उनके घोड़े थक जाते, तो उनको कन्या पर अधिकार कर लेने दिया जाता, और वे विजयोल्लास में उसे ले जाते। कन्या के कृत्रिम अपहरण की प्रथा एक शताब्दी पूर्व स्काटलैण्ड और आयरलैण्ड के कुछ भागों में भी पाई जाती थी।

निस्सन्देह, इस प्रकार की कुछ प्रथाएँ वास्तविक कन्या–अपहरण की क्रिया से प्रेरित होकर चली हैं, लेकिन इसका यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि अपहरण कभी विवाह करने की प्रचलित या स्वाभाविक विधि के रूप में भी रहा है। युद्धप्रिय जनजातियों में पत्नी प्राप्त करने के लिए किसी दूसरी जनजाति की स्त्री के अपहरण की वीरतापूर्ण कार्य के रूप प्रशंसा की जा सकती है, अतः सामान्य लोगों द्वारा अपने विवाहों में इसी का मनोरंजनात्मक अनुकरण हो सकता है। कुछ देशों में विवाह के समय वर और कन्या को राजा और रानी के रूप में माना जाता है, लेकिन यह कौन मानने को तैयार होगा कि यह प्रथा (राजा–रानी मानने) किसी उस काल की अवशेष है, जब विवाह केवल राजपरिवारों के व्यक्तियों के ही होते थे? अधिकाँश दशाओं में तो यह प्रतीत होता है कि कन्या के सम्बन्धियों का रस्मी प्रतिरोध अपनी लड़की को अपने से पृथक् करने की इच्छा अथवा काम सम्बन्धी उस लज्जा की भावना की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है, जो सरल लोगों में अत्यधिक तीव्र हो सकती है और जिसको निकटतम सम्बन्धियों के सन्दर्भ में विशेषरूप से अनुभव किया जा सकता है। लड़की को अपने से पृथक् करने को माता–पिता की वास्तविकता या प्रच्छन्न अनिच्छा अनेक रूपों में व्यक्त हो सकती है। साइबेरिया में यूकाघीर लोगों में मध्यस्थ व्यक्ति लड़की के माता–पिता से लड़की ले जाने से सम्बन्धित प्रस्ताव अत्यन्त प्रच्छन्न रूप में प्रस्तुत करता है, और लड़की का पिता, अपने परिवार की सम्पूर्ण प्रतिष्ठा को प्रदर्शित करने की इच्छा से, प्रायः पहले नकारात्मक उत्तर ही देता है। हाँ, प्रारम्भ में ही स्वीकृति देने से इन्कार करने और बारात के मार्ग में बाधा प्रस्तुत करने में पीछे अर्थलोलुपता का भाव भी निहित हो सकता है जिसे केवल निष्कृतिध धन (Ransom) देकर ही काबू किया जा सकता है।

प्रायः मुख्यतः केवल लड़की द्वारा ही प्रतिरोध किया जाता है अथवा दुःख व्यक्त किया जाता है। इसे भी आदिम अपहरण–विवाह के अवशेष के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। उदाहरण के लिए, हमें यह बताया जाता है कि ग्रीनलैण्ड के पूर्वी तट पर विवाह करने की केवल यही विधि है कि पुरुष लड़की के तम्बू में जाए और उसके बालों या अन्य किसी चीज को पकड़ कर, बिना किसी अन्य झमेले के, उसे उसके निवास से बाहर घसीट लाए। इस प्रथा के कारण प्रायः हिंसात्मक दृश्य उपस्थित हो जाते हैं; क्योंकि एकाकी स्त्रियाँ विवाह के किसी प्रस्ताव के प्रति सदा लज्जा और अरुचि व्यक्त करती हैं। यदि ऐसा न करें, तो उनकी लज्जाशीलता की प्रतिष्ठा को क्षति पहुँचने का भय रहता है। ऐसे अवसरों पर, स्त्री के सम्बन्धी चुपचात खड़े देखा करते हैं; क्योंकि पुरुष–स्त्री के इस संघर्ष को विशुद्ध रूप से व्यक्तिगत कार्य समझा जाता है। सिंचाई के बेदुअन लोगों में, सगाई का संकेत पाने पर ''लड़की का पहाड़ों की ओर भागना एक शिष्टाचार माना जाता है''; और मोरक्को में विदाई की तैयारी के समय लड़की से चीखने–चिल्लाने की आशा की जाती है। समस्त इण्डो–योरोपीय लोगों में कन्या द्वारा चीखने–चिल्लाने अथवा रस्मी अनिच्छा दिखाने की प्रथा पायी जाती है। प्राचीन हिन्दू–विवाह में कन्या का चीखना विवाह का आवश्यक अंग था, और यह प्रथा आधुनिक भारत में भी प्रचलित है। रोमन लोगों में कन्या विदा के समय अपनी माता की गोद की ओर भागती थी, और उसें वर तथा उसके साथी उसे बलपूर्वक ले जाते थे। जर्मनी में यह अति प्रचलित विश्वास है कि कन्या का चिल्लाना शकुन होता है, अर्थात् यदि वह विवाह–संस्कार के बीच में रोती है, तो अपने विवाहित जीवन में सुखी रहेगी। रूस में कन्या के अच्छी तरह चीखने को विशेष महत्त्व दिया जाता है, और वह जितना अधिक चीखती है, वह अपने मित्रों से उतना ही प्रशंसा प्राप्त करती है। विभिन्न लेखकों का यह मत है कि आधुनिक योरोप में नियम के रूप में चिल्लाना भी अपहरण विवाह के अवशेषों से सम्बन्धित है।

लेकिन कन्या के प्रतिरोध और रोदन तथ उसके सम्बन्धियों के विरोध को अपहरण का अवशेष नहीं माना जा सकता है; क्योंकि उसके सम्बन्धी उसे अपने से पृथक् करने के लिए स्वभावतः अनिच्छुक या दुःखी होते हैं, और इसी प्रकार वह भी उनसे पृथक् किए जाने

के कारण दुःखी होती है। दोनों ही दशाओं में उदासी या दुःख की भावना विवाह के अवसर पर संस्कार के रूप में व्यक्त की जाती है तथा उस पर जोर दिया जाता है। लेकिन कन्या का यह आचरण अधिकाँशतः स्त्रियों की लज्जा की प्रवृत्ति अथवा काम–सम्बन्धी संकोच, जो वास्तविक हो या आरोपित, के कारण होता है। यह भावना विवाह की प्रारम्भिक अवस्था में अथवा अन्त में विभिन्न रूपों में व्यक्त होती है। यह भाव केवल स्त्रियों में ही देखने को नहीं मिलता है, अपितु पुरुषों में भी इसके उदाहरण मिलते हैं। इतना ही नहीं, बल्कि वर का अपहरण भी हो सकता है। आसाम के गारो लागों में, विवाह के दिन कन्या के कुछ सम्बन्धी वर की झोपड़ी में उसे लेने के उद्देश्य से जाते हैं। ''उनको आते देखकर अथवा उनके आने की सूचना प्राप्त होने पर ही वह (वर) किसी एकान्त कमरे में घुस जाता है अथवा जंगल में छिप जाता है। कन्या–पक्ष के लोग परिश्रमपूर्वक उसकी खोज करते हैं और पाने पर उसे बलपूर्वक पकड़ लाते हैं। इसी बीच वे उससे विवाह की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए उसे अनेक प्रलोभन देते हैं। लेकिन जब वे सफल नहीं होते हैं, तो उसे तालाब में डुबोते है और कई बार उसे पानी में डुबकी लगवाते हैं। अन्ततः जब वह अपनी स्वीकृति देता है, तो उसे पानी से बाहर निकालते हैं और विजयोल्लास के साथ उसे पकड़कर कन्या के घर ले जाते हैं।'' दक्षिणी मैसीडोनिया के ग्रीक लोगों में कन्या नहीं बल्कि वर को ''उठाया'' जाता है। सप्ताह भर तक चलने वाले विवाह–समारोह के अन्तिम दिन वर के पास कन्या की ओर से एक दूत आता है, जो वर को उसी समय भूमि से उठाने का प्रयत्न करता है, और वर अपनी पूर्ण क्षमता के साथ प्रतिरोध करता है।

कल्पनाशील लेखकों द्वारा अन्य अनेक प्रथाओं को भी अपहरण के अवशेष के रूप में स्वीकार किया गया है। द्वार पर वर को उठाने, वर के मुख पर सेहरा डालने, विवाह में अँगूठियों के धारण करने, वर–कन्या के विदा होने पर जूता फेंकने, सोहागरात में वधू के मित्रों और सम्बन्धियों के दूर रहने आदि की प्रथाओं को अपहरण से सम्बन्धित किया जाता है। इन प्रथाओं पर आगे विवाह–संस्कार के सन्दर्भ में विचार किया जाएगा। यहाँ यह केवल इतना कहना है कि इन प्रथाओं में से कोई प्रथा अपहरण–विवाह से सम्बन्धित होने का किंचित दावा नहीं कर सकती है।

6

विवाह की एक शर्त–सम्मति

विवाह केवल वर–कन्या से ही सम्बन्धित नहीं होता है, अपितु इसका अन्य व्यक्तियों से भी सम्बन्ध है। अतः विवाह सम्पन्न होने के लिए इन अन्य व्यक्तियों की सम्मति या स्वीकृति की अपेक्षा हो सकती है, अथवा इन्हीं के द्वारा विवाह की व्यवस्था की जा सकती है, और दूसरी ओर कन्या या वर अथवा दोनों की स्वीकृति नहीं ली जा सकती है।

शिशु या बाल–विवाह की प्रथा, असभ्य लोगों में बहुत व्यापक रूप में प्रचलित है, जिसमें वर–कन्या की सम्मति का प्रश्न ही नहीं उठता है। इन लोगों में तो सन्तानों के पर्याप्त बड़े हो जाने पर भी अधिकाँश दशाओं में माता–पिता द्वारा ही विवाह सम्पन्न होते हैं। युवा पुरुषों की अपेक्षा युवा लड़कियों को प्रायः अपने जीवन–संगी के चुनाव के लिए अन्य व्यक्तियों पर ही आश्रित रहना पड़ता है। यह कहना अनुचित न होगा कि जंगली लोगों में, जब तक लड़की का विवाह नहीं हो जाता है वह पूर्ण रूप से अपने पिता के अधीन ही रहती है, लेकिन अनेक दशाओं में लड़की के विवाह के लिए माता, भाई या मामा की सम्मति विशेष रूप से आवश्यक होती है। फिर भी, पिता या अन्य किसी की सम्मति का यह आशय नहीं है कि लड़की को बिना उसकी इच्छा के किसी व्यक्ति को दे दिया जाता है, अथवा दिया जा सकता है। विश्व के विभिन्न भागों की जंगली जातियों से सम्बन्धित बहुसंख्यक वर्णनों से ज्ञात होता है कि स्त्रियों से विवाह के सम्बन्ध में वास्तविक रूप में केवल स्वीकृति ही नहीं ली जाती है, अपितु विवाह की प्रथा के अनुसार भी यह आवश्यक होती है। यह रोचक उल्लेखनीय बात है कि आस्ट्रेलिया के आदिवासियों के अतिरिक्त, अधिक प्रगतिशील जंगली लोगों की तुलना में, निम्नतर जंगली लोगों में लड़कियों को विवाह के सम्बन्ध में निश्चित रूप से अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त है। वास्तव में, संस्कृति के आर्थिक पक्ष की प्रगति ने क्रय–द्वारा विवाह करने की विधि का मार्ग दिखाया है, जिससे स्वभावतः लड़की की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगा है। जब से मनुष्य में सम्पति–संचय करने तथा गरीबें और अमीर का भेदभाव करने की प्रवृत्ति ने जन्म लिया, तब

से परिवार अपने सदस्यों के विवाहों के सम्बन्ध में अधिक रुचि लेने लगे हैं, और व्यक्तियों को इस सन्दर्भ में स्वतन्त्रता देने को बहुत कम इच्छुक हैं।

जब हम जंगली और बर्बर मनुष्य प्रजातियों से आदिम सभ्यता के लोगों तक आते हैं, तो हमें पैतृक या माता–पिता की सत्ता का अस्तित्व मिलता है, तथा सन्तानों में उनके प्रति समर्पण का भाव बहुत अधिक प्राप्त होता है। पुत्र–धर्म मनुष्य का आधारभूत कर्त्तव्य है – इस विचार ने परिवार सम्बन्धी चीनी विधायन को अभी हाल तक प्रभावित किया है। किसी भी अवस्था का कोई व्यक्ति अपने माता–पिता के जीवन काल में अथवा ज्येष्ठ निकट रक्त–सम्बन्धियों के होते हुए अपने विवाह के मामले में स्वयं प्रमुख नहीं बन सकता था। हिब्रू लोगों में माता–पिता के प्रति सन्तान के जिन कर्त्तव्यों को महत्त्व दिया गया, वे बाइबिल के उन दस आदेशों के अत्यन्त अनुरूप है, जिनमें ईश्वर के प्रति मनुष्य के कर्त्तव्य बताए गए हैं। पिता को लड़की के केवल विवाह के सम्बन्ध में ही असीमित अधिकार नहीं प्राप्त हैं, अपितु वह अपनी लड़की को रखैल के रूप में किसी व्यक्ति को भी बेच सकता है, बशर्ते वह व्यक्ति विदेशी न हो। वह अपने पुत्रों के लिए पत्नियों का चुनाव करता है। कभी–कभी चुनाव का कार्य माता द्वारा होता है। इस बात के संकेत नहीं प्राप्त होते हैं कि पुत्रों की इस अधीनता का अन्त किसी निश्चित अवस्था के बाद हो जाता है। प्राचीन रोमन लोगों में, गृह–पिता को समस्त अधिकार प्राप्त थे, और घर के अन्य लोग कानूनी अधिकारों से वंचित थे–पत्नी और सन्तान बैलों या गुलामों से अधिक नहीं थे। यहाँ तक कि वयस्क पुत्र और सन्तानें भी गृह–पिता की सत्ता के अधीन थे। पुत्र और पुत्रियों दोनों के विवाह के सम्बन्ध में गृह–पिता की सम्मति अपरिहार्य थी। इस बात के कोई प्रमाण नहीं प्राप्त होते हैं कि रोमन गृह–पिता को अपनी किसी भी उम्र की सन्तानों पर जो प्रभुसत्ता प्राप्त थी, वह अन्य किसी इण्डो–योरोपीय लोगों में कभी प्रचलित रही थी। ग्रीक और ट्यूटन लोगों में, पुत्रों पर पिता की सत्ता का अन्त उस समय हो जाता था, जब पुत्र बड़े हो जाते थे और पिता का घर छोड़ देते थे, तथा वयस्क पुत्रों को अपनी पत्नी चुनने का भी अधिकार प्राप्त था। लेकिन लड़कियों के सम्बन्ध में पिता को यह अधिकार था कि वह उनकी इच्छा से अवगत हुए बिना भी उनका विवाह किसी भी व्यक्ति से कर सकता था। फलतः ग्रीक स्त्री

का विवाह प्रायः ऐसे पुरुष के साथ कर दिया जाता था, जिससे वह नितान्त अपरिचित होती थी। यद्यपि इस प्रकार के कोई प्रमाण नहीं प्राप्त होते हैं कि भारतवर्ष में पूर्ण रूप से रोमन लोगों के समान ही पितृ–सत्ता का अस्तित्व था; लेकिन हिन्दुओं में पितृ–सत्ता या माता–पिता की सत्ता बहुत प्राचीन काल से थी, और आज भी बहुत अधिक है; यहाँ माता–पिता के प्रति पूज्यभाव रखना सन्तान का अनिवार्य कर्त्तव्य है। हिन्दुओं की वर्तमान प्रथा के अनुसार लड़की के विवाह में माता–पिता की स्वीकृति अनिवार्य होती है, तथा विवाह में लड़के के पहले माता–पिता की सम्मति अनिवार्य समझी जाती है, तथा बाद में भी (दूसरे–तीसरे विवाह में) सदा उनसे सलाह लेना वाँछनीय माना जाता है।

योरोप में प्राचीन प्रकार की पितृ–सत्ता उस प्रणाली की ओर शनैः–शनैः झुकी है, जिसके अन्तर्गत पिता को उन अत्यावश्यक अधिकारों से वंचित किया गया है जो उसे पहले अपनी सन्तानों के सम्बन्ध में प्राप्त थे। इस प्रणाली से पिता की सत्ता में जो आन्तरिक विचलन हुआ, उसे फ्राँसीसी विश्वकोशकार के अनुसार इस प्रकार व्यक्त किया जाता है : "पैतृक सत्ता अधिकार की अपेक्षा एक कर्त्तव्य है।"

अन्धविश्वास के युग में भी रोमन गृह–पिता की सत्ता महत्त्वपूर्ण प्रतिबन्धों के द्वारा सीमित थी। जस्टेनियन न्याय के अनुसार पिता अपनी पुत्री या अपने पुत्र को विवाह के लिए विवश नहीं कर सकता था, लेकिन इसके साथ–ही–साथ उसकी सत्ता के अन्तर्गत रहने वाले किसी उम्र के किसी व्यक्ति के विवाह की वैधता के लिए उसकी स्वीकृति आवश्यक थी। कैनन कानून ने यह सिद्धान्त अपनाया कि कोई भी विवाह वर–कन्या की स्वीकृति के बिना सम्पन्न नहीं किया जा सकता, लेकिन अपने इस मत के परिणामस्वरूप कि विवाह एक पवित्र संस्कार है, यह नियम बना कि वर या कन्या कितनी ही कम उम्र के क्यों न हों, उनके विवाह की वैधता के लिए उनके माता–पिता या संरक्षकों की स्वीकृति आवश्यक नहीं है। निश्चित ही चर्च ने बिना स्वीकृति या सम्मति के ऐसे विवाहों को अस्वीकार किया, अर्थात्, माता–पिता की स्वीकृति बिना होने वाले विवाह को अनुचित माना गया, लेकिन इसने इस प्रकार के विवाहों को रद्द नहीं माना। लूथर तथा अन्य सुधारकों का इस सम्बन्ध में भिन्न मत था। उन्होंने प्रतिपादित किया कि बिना माता–पिता की स्वीकृति

के हुए, उन विवाहों को अवैध माना जाना चाहिए, जिनमें विवाह होने के पश्चात् भी माता–पिता की स्वीकृति न प्राप्त हुई हो। इस सिद्धान्त को शनैः–शनैः प्रोटेस्टेण्ट देशों के अधिकाँश विधायकों ने स्वीकार कर लिया। लेकिन उन्होंने इसमें इतना संशोधन किया कि माता–पिता केवल सद्कारणों के आधार पर ही अपनी स्वीकृति देने से इन्कार कर सकते हैं, और यदि आवश्यकता हो, तो माता–पिता की स्वीकृति के स्थान पर अधिकारियों की स्वीकृति भी ली जा सकती है। रोमन कैथोलिक देशों में कैनन कानून का विरोध हुआ। वहाँ के विधायकों ने घोषित किया था कि विवाह की वैधता के लिए माता–पिता की स्वीकृमित आवश्क है, और यदि वे स्वीकृति न दें, तो उसकी अपील अन्यत्र नहीं हो सकती, (अर्थात् उनकी स्वीकृति के स्थान पर अधिकारियों की स्वीकृति मान्य नहीं होती)। फ्रॉंसीसी ''कोड सिविल'' के अनुसार, 1907 तक, पच्चीस वर्ष से कम उम्र के पुत्र तथा इक्कीस वर्ष से कम उम्र की पुत्रियाँ बिना माता–पिता की स्वीकृति विवाह नहीं कर सकते थे, लेकिन फ्रॉंस का वर्तमान कानून इवकीस वर्ष के पुत्र और पुत्री दोनों को बिना ऐसी स्वीकृमित के विवाह करने की अनुमति देता है। फिर भी, इक्कीस से तीस वर्ष के लड़के–लड़कियों को स्वीकृति के लिए माता–पिता से पूछना चाहिए और यदि वे इन्कार करें, तो एक ऐक्ट के अनुसार इस कार्य की व्यवस्था एक नोटरी के समक्ष की जा सकती है, और यदि तीस दिन के अन्दर स्वीकृति नहीं प्राप्तम होती, तो बिना स्वीकृति के ही विवाह सम्म्पन्न किया जा सकता है।

इंगलैण्ड में ''कामन लॉ'' के अनुसार, पहले चौदह वर्ष के लड़के और बहारा वर्ष की लड़की का विवाह, बिना माता–पिता की स्वीकृति के वैध माना जाता था, लेकिन सन् 1753 से ''लार्ड हार्डविक विवाह अधिनियम'' के अनुसार ऐसे विवाह अमान्य घोषित किए गए। इंगलैण्ड के वर्तमान कानून के अनुसार'', जहाँ कोई व्यक्ति, जो विधवा या विधुर न हो, इक्कीस वर्ष के कम आयु का है, वहाँ पिता, यदि जीवित है, या, यदि वह मर चुका है, तो संरक्षक या संरक्षकों, या उनमें से कोई एक या कानूनी रूप में कोई संरक्षक नहीं है, तो माता (यदि उसने पुनर्विववाह नहीं किया है) को लड़के या लड़की के विवाह में स्वीकृति देने का अधिकार प्राप्त है, और जहाँ पर इस प्रकार की स्वीकृति देने वाला कोई अधिकारी

व्यक्ति नहीं हो, तो इस स्थिति के अतिरिक्त प्रत्येक अवस्था में ऐसी स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक है। फिर भी, ऐसी स्वीकृति के बिना हुए अल्पवय के लड़के–लड़कियों के विवाह अमान्य नहीं हैं, लेकिन इस प्रकार के विवाह करके जो पक्ष माता या पिता अथवा संरक्षक को आघात पहुँचाएगा, वह उनकी किसी सम्पत्ति के समस्त अधिकारों और लाभों से वंचित किया जा सकता है। इसके विपरीत, स्काटलैण्ड में तारुण्य की अवस्था–प्राप्त अल्पवय के लड़के–लड़कियों को विवाह के लिए माता–पिता की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं है, और संयुक्तराज्य के ''कामन लॉ'' जो ''लार्ड हार्डविक विवाह अधिनियम'' से प्रभावित नहीं हुआ था, के अनुसार अल्पवयस्कों के विवाह भी बिना माता–पिता की स्वीकृति के मान्य हैं।

7

प्रतिदेय तथा उपहारों के विनियम द्वारा विवाह

निम्न प्रजातियों में सामान्यतः माता–पिता बिना कुछ लिए विवाह की स्वीकृति नहीं प्रदान करते हैं। अधिकाँश दशाओं में कन्या के पिता या उसके सम्बन्धियों को कुछ प्रतिदेय (मुआविजा) देना पड़ता है। यह प्रतिदेय कन्या के बदले कन्या देना हो सकता है, अथवा सेवा या सम्पत्ति या अन्य किसी रूप में हो सकता है।

आस्ट्रेलिया के आदिवासियों में विवाह करने की सबसे सामान्य विधि यह प्रतीत होती है कि वहाँ, पुत्रों के माता–पिता अपने–अपने पुत्रों के लिए पत्नियाँ प्राप्त करने के लिए परस्पर लड़कियों का विनिमय करते हैं या कुछ जनजातियों में नवयुवक स्वयं अपनी बहनों या अन्य स्त्री सम्बन्धियों का विनिमय कर लेते हैं। आस्ट्रेलिया के आदिवासियों की इस उल्लेखनीय प्रथा का महत्त्वपूर्ण कारण अनुमानमतः पत्नी–प्राप्त होने की असामान्य कठिनाई है। यह कठिनाई किसी सीमा तक वर्ग और गोत्र सम्बन्धी उन कठोर नियमों से उत्पन्न हुई है, जो विवाह के उस वृत्त को बहुत सीमित कर देता है, जिसके अन्दर ही पुरुष को विवाह करने की अनुमति होती है। इस स्थिति में, उस व्यक्ति को पत्नी प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं होती है जिसके बहिन होती है, क्योंकि उसे विनिमय के द्वारा उस वर्ग और गोत्र में पत्नी प्राप्त हो जाती है जिसमें उसे विवाह की अनुमति होती है। कन्या–विनिमय करने की प्रथा विश्व के अन्य भागों में भी पाई जाती है; लेकिन इसके साथ–साथ अधिकाँशतः वहाँ सामान्य क्रय द्वारा पत्नी प्राप्त करने की प्रथा भी होती है, जिसके अनुसार विवाह में कन्या–मूल्य देना पड़ता है। इस कन्या–मूल्य को बचाने की दृष्टि से, यह कन्या–विनिमय की प्रथा अपनायी गई है, जिसे एक प्रकार से आर्थिक बचत का उपाय ही कहा जा सकता है।

विनिमय द्वारा विवाह करने की प्रथा की अपेक्षा लड़की के पिता की सेवा करके पत्नी प्राप्त करने की प्रथा अधिक व्यापक है। यह प्रथा, जिसे हमने हिब्रू लोगों की परम्परा से जाना है, विश्व के अन्य अनेक सरल लोगों में भी पाई जाती है। इसमें जो व्यक्ति जिस

लड़की से विवाह करना चाहता है, वह उसके परिवार में कुछ समय के लिए जाता है, और वहाँ नौकर के रूप में कार्य करता है। यह सेवा–काल भिन्न–भिन्न लोगों में पृथक्–पृथक् होता है : यह एक वर्ष से कम होता ही नहीं है, और कभी–कभी दस या बारह अथवा पन्द्रह वर्ष भी हो सकता है तथा विवाह के बाद भी जब तक बच्चा न पैदा हो जाए या बाद तक भी दामाद को अपने ससुर के परिवार में नौकरी करनी पड़ सकती है। अधिकाँश दशाओं में सेवा द्वारा विवाह करने की प्रथा का स्पष्ट कारण विवाह में कुछ लिए बिना लड़की न देने की पिता की इच्छा है। इस कथन की सार्थकता उन उदाहरणों से सिद्ध होती है, जिनमें सामान्य क्रय द्वारा विवाह करने के स्थान पर सेवा द्वारा विवाह की विधि को स्वीकार किया गया है। लेकिन इसका मूल उद्देश्य नवयुवक की कार्य–क्षमता की परीक्षा करना तथा यह पता लगाना हो सकता है कि वह स्वीकार करने योग्य पति और दामाद है भी या नहीं। उदाहरण के लिए साइबेरिया के कोरियांक लोगों में "सेवारत वर सामान्य कर्मचारी नहीं होता है। उससे उपयोगिता के विचार से काम नहीं लिया जाता है, अपितु उसे कठोर और अपमानजनक काम में लगा कर उसकी परीक्षा ली जाती है। वर को बहुत कष्ट का बिस्तर दिया जाता है, बुरा भोजन दिया जाता है, देर तक सोने नहीं दिया जाता है, जानवरों की रखवाली करते हुए बिना सोए रातें बितानी पड़ती हैं, जबकि लड़की के पिता और भाई आराम करते रहते हैं। कन्या का पिता विवाह की स्वीकृति तब देता है, जब वर इस परीक्षा–काल में ठीक–ठीक उत्तीर्ण हो जाता है।

अधिकाँशतः पत्नी प्राप्त करने के लिए किसी प्रकार की सम्पत्ति देनी पड़ती है अथवा अन्य किसी रूप में प्रतिदेय देना पड़ता है। निम्नतम जनजातियों में प्रतिदेय की यह धनराशि बहुत नगण्य होती है, तथा अनेक ऊँचे स्तर के असभ्य लोगों में प्रतिदेय अल्पमूल्य का ही होता है। प्रायः यह केवल एक उपहार के रूप में ही होता है जो वर द्वारा व्यक्त सद्भावना या सम्मान का प्रतीक माना जाता है। अतः पत्नी प्राप्त करने के लिए जो धन या उपहार दिया जाता है, उसके पीछे सदा क्रय करने की भावना ही निहित नहीं होती है; क्योंकि अनेक लोगों में कन्या–पक्ष के लोग वर या वर–पक्ष को भी बदले में धन और उपहार देते हैं। विवाह के अवसर पर उपहारों के विनिमय की प्रथा अत्यधिक व्यापक है।

अनेक जनजातियों में यह नियम है कि वर–पक्ष से कन्या–पक्ष को जितने मूल्य का उपहार दिया जाए, कन्या–पक्ष उतने ही मूल्य का उपहार वर–पक्ष को लौटाए; कभी–कभी कन्या–पक्ष द्वारा लौटाया जाने वाला उपहार अधिक होगा। इसके साथ–साथ, हम प्रायः यह भी पाते हैं कि यह प्रतिदेय इतना महत्त्वपूर्ण बन जाता है कि संस्कृति के आर्थिक पक्ष की प्रगति के कारण विवाह व्यापारिक सौदे का रूप धारण कर लेता है। फिर भी, ऐसी स्थितियों में यह नहीं मान लेना चाहिए कि लड़कियाँ, उनके सम्बन्धियों द्वारा, चल सम्पत्ति के रूप में बेची जाती हैं। एक पुरुष केवल उन्हीं अधिकारों को ''क्रय'' कर सकता है, जो प्रथा के अनुसार पति को प्राप्त होते हैं। पति के ये अधिकार कितने ही बड़े क्यों न हों, हम निश्चित रूप में यह कह सकते हैं कि ये किसी भी दशा में पूर्ण निरंकुश नहीं हैं, तथा किन्हीं भी लोगों में विवाहित स्त्री पूर्ण रूप से अपने पति की कृपा पर आश्रित नहीं होती है। उत्तरी अमेरिका के कुछ लोगों तथा अफ्रीका की कुछ जनजातियों में कन्या–मूल्य देने पर भी पति का पत्नी के बच्चों पर अधिकार नहीं प्राप्त होता है; क्योंकि वहाँ पर पिता को बच्चों के लिए पत्नी के पिता या परिवार को विशेष भुगतान करना पड़ता है; लेकिन अफ्रीका के अन्य लोगों में यदि पत्नी बच्चे को बिना जन्म दिए ही मर जाती है, तो पति अपनी पत्नी के परिवार से कन्या–मूल्य को वापस लेने का अधिकारी होता है, अथवा उसके स्थान पर वह दूसरी स्त्री सामान्यतः उसकी बहिन, की माँग कर सकता है।

जहाँ पर कन्या–मूल्य देने की नियमित प्रथा है, वहाँ किसी लड़की या उसके परिवार के लिए यह बहुत अपमान जनक बात होगी, यदि लड़की का विवाह बिना कुछ मूल्य लिए ही कर दिया जाता है। इसका आशय यह होगा कि उस लड़की का कोई महत्त्व ही नहीं है। काफिर महिलायें ऐसी स्त्री को पुरानी बिल्ली कहती हैं जो यथा समय पशु देकर खरीद नहीं ली जाती है; क्योंकि इन आदिवासियों की दृष्टि में केवल बिल्ली ही एक ऐसा पशु है, जो बिक्री के महत्त्व से निरर्थक होती है। इसके विपरीत, वह स्त्री गौरवशालिनी मानी जाती है जिसके लिए सामान्य की तुलना में बहुत अधिक धन दिया जाता है।

प्रतिदेय देकर विवाह करने की सामान्य विधि केवल असभ्य संसार के समस्त स्तरों में ही नहीं है, अपितु यह विधि उन लोगों में भी पाई जाती है जो संस्कृति के उच्च स्तर पर भी पहुँच चुके हैं। इस बात के संकेत प्राप्त होते हैं कि एक समय में इसका चीन और जापान में अस्तित्व था। सेमेटिक प्रजाति की विभिन्न शाखाओं में भी यह विधि प्रचलित रही है। इंजिल के पहले अध्याय में हम पढ़ते हैं कि लेबान की चचेरी बहिनों लीह और रैचल को प्राप्त करने के लिए, जैकोब ने लेबान के यहाँ सात–सात वर्षों तक सेवा की थी। इजराइल और प्राचीन अरबों में पत्नी प्राप्त करने के लिए कन्या–मूल्य देने की प्रचलित विधि थी। यह माना गया है कि आर्य प्रजाति के लोगों के पृथक्करण के पूर्व उनमें विवाह का आधार पत्नी–क्रय ही था। वैदिक युग में लड़की के पिता को बहुमूल्य उपहार देकर लड़की को पत्नी के रूप में प्राप्त किया जाता था, यद्यपि पुत्री–विक्रय की इस प्रथा के साथ कुछ अपकीर्ति का भाव संलग्न रहा होगा। पौराणिक हिन्दू विधि–निर्माता मनु ने आठ प्रकार के जिन विवाहों का उल्लेख किया है, उनमें एक प्रकार क्रय द्वारा विवाह भी था। वह (मनु) यह स्वीकार करता है कि कुछ लोग दो नीची जातियों को इस प्रकार से विवाह करने की अनुमति देते हैं, लेकिन वह स्वयं इस रीति का पूर्णरूप से निषेध करता है। इस निषेध के बावजूद, यह प्रथा आजकल भी कुछ ऊँची जातियों तक में पाई जाती है, और नीची जातियों में तो यह प्रथा बहुधा व्यवहार की जाती है। अरस्तू से हमें ज्ञात होता है कि आदिम युगों में ग्रीस के पुरुष क्रय–द्वारा पत्नियाँ प्राप्त करते थे। वीर–युग में विवाहार्थी अपनी भावी पत्नी के पिता को पशु देता था। ऐसी लड़की को एक विशेष शब्द से सम्बोधित किया जाता था, जिसका अर्थ था वह लड़की जो अपने विवाह में अपने माता–पिता को, विवाह कके लिए प्रत्याशी व्यक्ति से, अनेक बैल उपार्जित कराती हो। रोमन लोगों में क्रय द्वारा पत्नी प्राप्त करने को विवाह की एक विधि के रूप में पूर्ण निश्चय के साथ तो नहीं प्रतिपादित किया जा सकता है, लेकिन यह माना जाता है कि रोम की विवाह–संस्कार की परम्परागत पद्धति जो विवाह–सम्पन्न करने की सामान्य रीति थी में कन्या–क्रय के अवशेष सुरक्षित रखे गए हैं। प्रतिदेय द्वारा विवाह करने की प्रथा समस्त ट्यूटन लोगों में प्रचलित थी। हम यह मान सकते हैं कि प्रारम्भ में वर द्वारा दी जाने वाली धनराशि पर विवाह आधारित होता था, लेकिन कानूनी पुस्तकों के युग में, इंगलैण्ड तथा

महाद्वीप में, इसका निश्चय प्रथा या लिखित कानून द्वारा होता था। राजा एथेलबर्थ का ''केनटिश कानून'' पशुओं को देकर स्त्री खरीदने की बात कहता है, तथा इस प्रकार के कार्य को ''सौदे'' की संज्ञा देता है। जर्मनी में स्त्री को क्रय करना'' वाक्याँश मध्य युग के अन्त तक प्रयुक्त होता रहा था, और हालैण्ड में, सामान्य जनता की भाषा में, आज भी कन्या के विवाह के कार्य–व्यापार को 'बिक्री' शब्द से अभिहित किया जाता है। लेकिन यहाँ भी हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि क्रय द्वारा विवाह में किसी सम्पत्ति जैसी वस्तु के क्रय करने का भाव नहीं निहित है : प्राचीन ट्यूटन लोग स्त्रियों पर अपना संरक्षकता का अधिकार तथा अन्य अधिकार, जो विवाह द्वारा पति को प्राप्त होते थे, क्रय करते थे। प्राचीन सेल्ट लोग अपनी पत्नी प्राप्त करने के लिए मूल्य देते थे तथा स्लाव लोग भी यही करते थे। ''रूस के किसानों में आज भी विवाहोत्सव की प्रथम क्रिया प्रस्ताव रखना या आवेदन करना होती है, जो विशुद्ध रूप से व्यावसायिक कार्य है।'' उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में, साइबेरिया में लड़कियों का मूल्य इतना अधिक बढ़ गया था कि वहाँ के एक राजकुमार को इस मूल्य को सीमित करना पड़ा था। हाई अल्बानियॉ में, ''यदाकदा लड़कियों के बलपूर्वक अपहरण के अतिरिक्त, पूर्ण रूप से क्रय द्वारा ही विवाह होते हैं।''

सभ्य लोगों में समय के साथ क्रय द्वारा विवाह की विधि में अनेक परिष्कार हो गए हैं, और इसने मूल प्रथा से पूर्ण रूप से भिन्न एक नई संस्था का रूप ले लिया है। इस नई प्रक्रिया की सामान्य प्रवृत्ति यह है कि लड़की के माता–पिता लड़की के विवाह से प्राप्त होने वाले आर्थिक लाभों को न्यूनाधिक रूप में परित्याग करते हैं, और वर–कन्या के हितों को विशेष महत्त्व प्रदान करते हैं। यहाँ भी हम बदले में उपहार देने की प्रथा पाते हैं, जो कुछ अवस्थाओं में तो क्रय–विाह की विधि का शमन या परिहार ही प्रतीत होती है। हम वर द्वारा कन्या को उपहार दिए जाने का प्रचलन पाते हैं। यद्यपि उपहार देने की इस प्रथा की निस्सन्देह अपनी स्वतन्त्र उत्पत्ति है, लेकिन ये उपहार पुरानी कन्या–मूल्य की प्रथा के अवशेष भी हो सकते हैं। अनेक दशाओं में कन्या के लिए जो मूल्य चुकाया जाता है, उस पर माता–पिता या संरक्षक का अधिकार नहीं होता है, बल्कि वह पूर्ण या आंशिक रूप से स्वयं कन्या की सम्पत्ति हो जाता है।

अरब–यहूदी देशों में कन्या को वर उपहार देता था, लेकिन कालान्तर में यह उपहार के रूप में दिया धन गया या इसका एक अंश कन्या की सम्पत्ति हो गया। आज भी यहूदियों और मुसलमानों दोनों में पति द्वारा पत्नी को दहेज देने की प्रथा प्रचलित है; कुरान के कानून के अनुसार यह माना जाता है कि कन्या के पिता को दिया जाने वाला धन कन्या का होगा। इण्डो–योरोपीय लोगों में भी कन्या–मूल्य का इसी प्रकार रूपान्तर हुआ है; क्योंकि उनकी भाषाओं में कन्या–मूल्य का अर्थ व्यक्त करने वाले शब्दों ने धीरे–धीरे दहेज शब्द के भाव को ग्रहण कर लिया है। पोलक और मेटलैण्ड का कथन है कि जब एंग्लो–सैक्सन लोगों की सगाई की प्रथा पर प्रकाश पड़ता है, तो विदित होता है कि यह कोई नकद का लेन–देन नहीं है, जिसमें कन्या के रक्त–सम्बन्धी अपने रक्त से सम्बन्धित स्त्री पर किसी पुरुष को अधिकार प्रदान करने के बदले कोई मूल्य पाते हैं, अपितु हमें यह कहना चाहिए कि वर उन लोगों (कन्या–पक्ष) से प्रतिज्ञाबद्ध होता है कि वह अपनी भावी पत्नी के प्रति एक समझौता या अनुबन्ध करेगा। वह घोषित करता है तथा इस बात की जमानत देता है कि यदि लड़की विवाहार्थी व्यक्ति को स्वीकार करती है, तो उसके द्वारा दिया गया प्रभात–उपहार लड़की को प्राप्त होगा तथा यदि वह उसके साथ जीवन व्यतीत करती है, तो वह स्त्रीधन का उपभोग करेगी। प्रभात–उपहार (मार्निंग गिफ्ट) (जो योरोप में बहुत दीर्घकाल तक तथा जर्मनी और स्विट्जरलैण्ड में हम लोगों के समय तक भी रहा है) के सम्बन्ध में अनेक लेखकों ने यह मत व्यक्त किया है कि यह कन्या मूल्य से ही उत्पन्न हुआ है या उसी का एक अंग है लेकिन इसे कन्या के कौमार्य और पवित्रता के लिए दिया जाने वाला मूल्य भी माना गया है। इसके नाम से ही प्रतीत होता है कि इसका वर–कन्या के लैंगिक सम्बन्ध स्थापित हो जाने से कुछ सम्बन्ध अवश्य है' लेकिन इस बात की भी बहुत सम्भावना है कि प्रभात–उपहार में केवल मुआविजे के भाव के अतिरिक्त अन्य कोई विचार भी सम्बन्धित हो। मोरक्को तथा मुस्लिम देशों में वर–वधू में लैंगिक सम्बन्ध स्थापित होने के ठीक पहले या कुछ समय बाद वर द्वारा वधू को रुपए भेंट किए जाते हैं। इस सम्बन्ध में हमारे पास यह विश्वास करने के अनेक कारण हैं कि इस भेंट का मूल उद्देश्य वर–वधू को उन रहस्यात्मक असद् प्रभावों से रक्षा करना था जिनसे उनको हानि पहुँचने की सम्भावना मानी जाती थी।

इस प्रकार हम प्रतिदेय द्वारा विवाह करने की विधि इस प्रथा तक पहुँचे, जिसमें वधू को कुछ धन प्राप्त करने की व्यवस्था है जो आँशिक रूप में कन्या के मूल्य के रूप में दिया जाने वाला धन होता है। कन्या को प्राप्त होने वाला धन विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति करता है, कभी–कभी कई उद्देश्य अभिन्न रूप से एक साथ परस्पर मिले होते हैं। इसका अर्थ वापसी उपहार हो सकता है। इसमें यह भाव निहित हो सकता है कि पति–पत्नी मिल कर जिस गृहस्थी का निर्माण करने जा रहे हैं, उसमें संयुक्त रूप से दोनों कुछ योगदान करें। अधिकाँशतः इसका उद्देश्य यह भी होता है कि यदि पति की मृत्यु अथवा अन्य किसी कारण से विवाह भंग हो, तो पत्नी के लिए कुछ धन की व्यवस्था हो। जैसे वधू को धन मिलने की व्यवस्था की जाती है, उसी प्रकार पति को भी प्रायः धन प्राप्त होता है। कन्या की तरह ही वर को भी वापसी उपहार दिया जा सकता है। इसका अर्थ पति को क्रय करना भी हो सकता है।

इस विवाह–धन ने प्राचीन ग्रीस में बहुत अधिक महत्त्व प्राप्त कर लिया था, वहाँ पर यह, रखैल स्त्री रखने से भिन्न, सम्मानीय विवाह करने की करीब–करीब कसौटी हो गया था, और ग्रीस से भी अधिक, रोम में तो यह वैध पत्नी का एक विशिष्ट लक्षण ही बन गया था। एक स्त्री को अपने पिता से स्त्री–धन मागने का कानूनी अधिकार था, लेकिन यह धन स्त्री को न देकर, उसके पति को दिया जाता था, जो संयुक्त गृहस्थी के खर्चों के भुगतान के लिए होता था; यद्यपि इसका उद्‌देश्य पत्नी के हितों की रक्षा की व्यवस्था करना भी होता था। प्राचीन कानून के अनुसार विवाह के भंग हो जाने के बाद भी पति ही इस धन का मान्य स्वामी था, लेकिन ''जस्टनियन कानून'' ने पति द्वारा इस धन के उपयोग और उपभोग का अधिकार उस अवधि तक सीमित कर दिया, जब तक विवाह भंग नहीं होता। बाद के योरोपीय विधायनों में यह सिद्धान्त स्वीकार किया गया कि स्त्रीधन पत्नी की ही सम्पत्ति है, यद्यपि पति उसकी व्यवस्था और उसका उपयोग कर सकता है। दीर्घकाल तक–कुछ देशों में उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक लड़की को विवाह के अवसर पर दहेज माँगने का अधिकार था। यद्यपि माता–पिता कानूनी रूप में ल़कियों को दहेज देने के लिए बाध्य नहीं हैं, लेकिन विशेष रूप में लैटिन देशों में लड़कियों को स्त्री–धन देने के पक्ष में

आज भी सशक्त भावना पाई जाती है। यह भावना बचत करने और जमा करने की उस आदत का सशक्त कारण है, जो फ्रॉंसीसी लोगों की विशेषता है, तथा सम्भवतः रोमन कानून के ऐच्छिक नियमों की परम्परा की सुदीर्घ श्रृंखला से उद्‌भूत है।

हमारे युग में महत्त्वपूर्ण सामाजिक संस्था के रूप में दहेज के सुरक्षित बनाए रखने में विशेष रूप से एक कारक सचेष्ट हैं। जहाँ कानून द्वारा एक पत्नी की प्रथा स्वीकृतम है, जहाँ वयस्क स्त्रियाँ वयस्क पुरुषों से संख्या में अधिक है, जहाँ अनेक पुरुष कभी विवाह नहीं करते हैं, जहाँ उच्च वर्ग की स्त्रियाँ अधिकाँशतः निरुद्यम और निष्क्रिय जीवन व्यतीत करती हैं, ऐसे समाज में दहेज लड़की के लिए उसी प्रकार पति खरीदने के साधन के रूप में कार्य करता है, जैसा कि पहले पुरुष लड़की के पिता से लड़की खरीदता था। भारतवर्ष में लड़की के लिए पति प्राप्त करने की कठिनाई ने प्रच्छन्न रूप से वर खरीदने की प्रथा को प्रेरित किया है। वहाँ पर यद्यपि नीची जातियाँ वधू खरीदती हैं, लेकिन ऊँची जातियाँ वर–पक्ष को धन देती हैं और किसी–किसी दशा में तो यह धन बहुत अधिक होता है।

8

विवाह के संस्कार

विवाह सम्पन्न होने के लिए जिस स्वीकृति की आवश्यकता होती है, उसके प्राप्त हो जाने के पश्चात् तथा अन्य शर्तो के पूरे हो जाने के उपरान्त कानूनी दृष्टि से विवाह को पूर्ण करने तथा वैध बनाने के लिए कुछ और भी आवश्यक हो जाता है। इस कारक की महत्ता हम लोगों में देखने को मिलती है। एक दम्पत्ति कानून द्वारा निर्धारित संस्कार को सम्पन्न करके पति और पत्नी के रूप में साथ–साथ रहता है, तथा एक पुरुष और एक स्त्री बिना इस प्रकार का संस्कार सम्पन्न किए ही साथ–साथ रहते हैं– इन दोनों प्रकार के स्त्री–पुरुषों में अन्तर है। कानूनी शब्दावली में बाद वाले स्त्री–पुरुष विवाहित बिल्कुल नहीं हैं, उनका यह सम्मेलन अनैतिक है तथा उनसे उत्पन्न सन्तानें अवैध हैं। समारोह के अतिरिक्त, जो वैध विवाह पूर्ण होने के लिए अपरिहार्य है, पुरानी प्रथाओं के अनुसार विवाह से सम्बन्धित अन्य अनेक ऐसे संस्कार भी पालन किए जाते हैं, जो आज कल तो मनोरंजन का विषय प्रतीत हो सकते हैं, लेकिन उनका मूल उद्देश्य और किसी सीमा तक उनका वर्तमान उद्देश्य भी केवल निरर्थक औपचारिकता से अधिक था या है।

विवाह–संस्कार का सर्वाधिक सामान्य सामाजिक लक्ष्य विवाह को प्रचार देना है। विवाह को वैध माने जाने के लिए इसका अनुमादेन एक अधिकारी द्वारा होना चाहिए, अथवा, जैसे मुसलमानी सुन्नी कानून के अनुसार होता है कि विवाह दो गवाहों के सामने होना चाहिए। ट्यूटन देशों में पहले कोई विवाह कानूनी दृष्टि से उसी समय वैध माना जाता था, जब यह सिद्ध कर दिया जाता था कि वर–कन्या दोनों एक कम्बल के नीचे रह चुके हैं। विवाह के प्रचारित करने की सर्वाधिक प्रचलित विधि विवाह के अवसर पर दावत देना है, जिसमें अतिथि अप्रत्यक्ष रूप से साक्षी माने जाते हैं।

विवाह से सम्बन्धित अनेक संस्कार भिन्न–भिन्न उद्देश्यों से सम्पन्न किए जाते हैं। सर्वाधिक प्रचलित संस्कारों में से कुछ तो वर–वधू के सम्मिलन के प्रतीक हैं, अथवा, यह कहें कि इनका मूल उद्देश्य विवाह–बन्धन को ऐसे कार्य (संस्कार) द्वारा सुदृढ़ करना था,

जिसमें जादुई प्रभाव निहित माना जाता था। ऐसे कार्यों या संस्कारों में पहला वर–वधू के हाथों को एक साथ जोड़ना है– यह इण्डो योरोपीय लोगों के विवाह का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संस्कार है; योरोप के कुछ देशों तथा भारत के अनेक भागों में वर–वधू के हाथ केवल जोड़े ही नहीं जाते हैं, अपितु एक साथ बाँध भी दिए जाते हैं। लेकिन वर–कन्या की किन्हीं अन्य चीजों को बाँध कर भी दोनों के सम्मिलन को व्यक्त किया जा सकता है। जैसे, दक्षिणी अफ्रीका की बेचुआना जनजाति के बसूटो लोगों में मारे हुए बैल के गले में लटकने वाली खाल की एक पट्टी का एक किनारा वर की कमर में और दूसरा कन्या की कमर में बाध दिया जाता है– यह इस बात का द्योतक माना जाता है कि अब वे दोनों परस्पर एक–दूसरे के प्रति बँधे हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सगाई और विवाह की अंगूठियाँ, कम–से–कम आँशिक रूप से, इसी उद्देश्य की पूर्ति करती हैं। विवाह की अंगूठी का प्राचीन हिन्दुओं में तथा सगाई की अंगूठी का प्राचीन रोम के लोगों में प्रचलन था। यह अंगूठी पुरुष अपनी प्रेमिका को भेंट करता था। यही प्रथा ईसाई योरोप में सम्पूर्ण मध्य युग में तथा बाद में भी प्रचलित रही थी, लेकिन बाद में इसके स्थान धीरे–धीरे वर–कन्या में अंगूठियों का विनिमय होने लगा। विवाह की इस अंगूठी से अनेक अन्धविश्वास जुड़े हुए हैं, जो यह संकेत करते हैं कि यह (अंगूठी) दम्पत्ति का प्रतीकात्मक बन्धन मानी जाती है। जैसे, इसके खोने या टूटने का आशय मृत्यु, विवाह–विच्छेद या अन्य आपत्ति का आना माना जाता है। स्काटलैण्ड के उत्तरी–पूर्वी लोगों में यदि कोई स्त्री विवाह की अंगूठी खो देती है, तो यह माना जाता है कि वह अपने पति को खो देगी।

आदिवासी और सभ्य दोनों लोगों में अत्यधिक प्रचलित और व्यापक संस्कार वर–वधू का एक साथ भोजन करना है। यह प्रथा हिन्दुओं के प्रत्येक वर्ग और और जाति में प्रचलित है इसका अस्तित्व प्राचीन ग्रीस और रोम लोगों में था, तथा आजकल भी योरोपी के विभिन्न भागों में सगाई या अधिकांशतः विवाह के अवसर पर एक ही थाली या तश्तरी में, या एक ही रोटी से लेकर अथवा एक ही चम्मच से वर–वधू के साथ–साथ खाने की प्रथा पाई जाती है। जहाँ तक इस संस्कार के अर्थ का सम्बन्ध है, इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यह मूल रूप से केवल प्रतीक से कुछ अधिक था। स्वीडन में यह प्रचलित विश्वास

था कि यदि लड़का–लड़की एक ही कौर से खाते हैं, तो दोनों में परस्पर प्रेम हो जाएगा जर्मनी में यह माना जाता है कि यदि दम्पत्ति ''प्रभात का सूप'' एक ही चम्मच से खाते हैं, तो उनका वैवाहिक जीवन शान्तिपूर्ण होगा। दम्पत्ति के साथ–साथ मदिरा–पान करने का भी संस्कार है, जो योरोप में इटली से नार्वे तक तथा ब्रिटेन से रूस तक पाया जाता है। यह समस्त देशों के यहूदियों के विवाहोत्सव का भी महत्त्वपूर्ण अंग है। जापान में वर–वधू साथ–साथ मदिरापान करते हैं, तथा नौ बार कप बदलते हैं, यही उनका सम्पूर्ण विवाहोत्सव होता है। दक्षिण भारत के इरूला लोगों में भावी पति को चिलम या हुक्के से तम्बाकू पीनी चाहिए और इसे भावी पत्नी को दे देना चाहिए। थोड़ा–सा पीकर पत्नी को पुनः उसे पति को वापस कर देना चाहिए।

अनेक संस्कार पत्नी को फलदायी या पुत्रों को माँ बनाने के लिए सम्पन्न किए जाते हैं। मोरक्कों में जब वधू वर के घर ले जायी जाती है, तो उसकी सवारी घोड़ी होनी चाहिए, क्योंकि वह फलदायी होती है अथवा सवारी के लिए कभी सांड़ घोड़ा होना चाहिए जिससे वह पुत्र को जन्म दे सके। स्वीडन के ग्रामीण लोगों में विश्वास किया जाता है कि विवाह के एक दिन पूर्व कन्या के साथ रात में सोने के लिए लड़का शिशु होना चाहिए जिससे उसकी पहली सन्तान पुत्र हो, तथा स्लाव लोगों में इसी उद्देश्य से छोटा लड़का वधू की गोद में बैठाया जाता है। यही प्रथा प्राचीन भारत में भी थी। इस सन्दर्भ में, एक अन्य विवाह–संस्कार का उल्लेख हो सकता है जिसे आदिम आर्यों से सम्बन्धित बताया जाता है, जिसके अनुसार वधू पर अन्न या फल फेंके जाते हैं। वर–वधू दोनों पर या केवल वर पर अथवा पूरी बारात पर अन्न या फल फेंकने की प्रथा पूर्व में भारत, हिन्द–चीन तथा मलय से पश्चिम में अटलाण्टिक समुद्र की ओर प्रचलित हुई है। इंगलैण्ड में वधू पर चावल के अतिरिक्त अन्य अन्न भी फेंका जाता था या कहीं–कहीं आज भी आधुनिक रीति के अनुसार रंगीन कागज फेंके जाने के अतिरिक्त पहले की तरह अन्न फेंका जाता है। सत्रहवीं शताब्दी में वधू के सिर पर उस समय गेहूँ डाला जाता था, जब वह चर्च से वापस आती थी। उत्तरी इंगलैण्ड में वर के घर का सबसे पुराना पड़ोसी वर के नए घर की देहली पर खड़ा कर दिया जाता है, जो वधू के गृह–प्रवेश के समय उसके सिर के ऊपर

से तश्तरी भर मैदा, मक्खन और चीनी की बनी हुई डबल रोटियाँ ऐसे फेंकता है, जिससे बाहर गिरें। इन रोटियों को लूटने के लिए बड़ी छीना–झपटी होती है; क्योंकि इन रोटियों के टुकड़ों को पाना सौभाग्य की बात माना जाता है। इस प्रकार की प्रथाएँ सामान्यतः सन्तान प्राप्त करने का साधन मानी जाती हैं, क्योंकि लोगों का इस सिद्धान्त पर विश्वास होता है कि सद् जादू तथा अन्न या फल उर्वरता के स्रोत हैं। यद्यपि यह स्पष्ट है कि जो लोग इन प्रथाओं का पालन करते हैं, वे इनको इसी दृष्टि से देखते है, किन्तु इसके अतिरिक्त इनको सम्पन्नता तथा सन्तान–लाभ या केवल सम्पन्नता अथवा समृद्धि का भी साधन माना जाता है। कुछ पश्चिमी रूस के यहूदियों में वधू के समक्ष फलप्रदायी प्रतीक के रूप में कच्चा अण्डा रखने की प्रथा है, जिसके अनुसार यह विश्वास किया जाता है कि जिस प्रकार मुर्गी शीघ्रता से अण्डा देती है, उसी प्रकार वधू भी शीघ्र ही गर्भवती हो सकती है।

विवाह से सम्बन्धित अनेक ऐसे संस्कार हैं जिनके द्वारा एक जीवन–साथी दूसरे जीवन–साथी को अपने वश में करने का प्रयत्न करता है। विवाह में एक–दूसरे पर आधिपत्य का एक दीर्घ संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है। मोरक्को में, वर, शासक बन जाने के उद्देश्य से, अपनी वधू के सिर या कन्धे पर तीन बार या सात बार तलवार द्वारा बहुत धीमे से स्पर्श करता है या मारता है। क्रोशिया में वर कन्या के कान पर मुक्का मारता है। स्लाव लोगों में, वधू द्वारा वर के जूते उतारने की प्रथा है, और रूस में वर जूते से वधू के सिर पर यह दिखाने के लिए प्रहार करता है कि वह अब उसके (वर के) अधीन है, तथा उसे उसके आदेशों को पालन करना होगा। लेकिन स्लोवेन लोगों में वधू वर को जूते से मारती है, जिससे उसे (वर को) पता चले जाए कि वह सदा उसके जूते नहीं उतारेगी तथा वधू भी यह जानती है कि अपने पुरुष पर कैसे अधिकार प्राप्त किया जाता है। मोरक्को में वधू उस मेमने को सजाती है जिसकी विवाह के अवसर बलि होती है। यह मेमना पति का प्रतीक होता है। वह अपना हार मेमने पर टाँग देती है; यह क्रिया इस बात का द्योतक होती है कि पति स्त्री के सामने निर्बल और निरापद जीव है। जब मेमने का पेट काट कर अलग कर दिया जाता है, तो वह (वधू) अपना दाहिना पैर उस पर रखती है। जर्मनी के

अनेक भागों में, जब पादरी दोनों के हाथ बाँधता है, तो वास्तव में, वधू अपना हाथ वर के हाथ के ऊपर रखने का प्रयत्न करती है, और इस प्रकार हाथों को ऊपर करने के लिए संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है। इस संघर्ष का अन्त पादरी द्वारा किया जाता है, जो वर के हाथ को ऊपर कर देता है।

उन संस्कारों के अतिरिक्त जो वधू या वर, अथवा दोनों को निश्चित रूप से लाभ पहुँचाने वाले माने जाते हैं, कुछ ऐसे भी संस्कार होते हैं जिनका उद्देश्य वर–वधू की बुरे प्रभावों से सुरक्षा करना या उनको ऐसे प्रभावों से मुक्त रखना होता है। जनसाधारण में यह सामान्य भावना या विचारधारा प्रचलित होती है कि वर–वधू खतरे की स्थिति में हैं, वे विशेषतः अन्य लोगों के जादुई कारनामों या कुदृष्टियों, बुरी आत्माओं के आक्रमणों या अन्य अवैयक्तिक रहस्यात्मक बुराई के शिकार हो सकते हैं, अतः उनकी सुरक्षा या उनके शुद्धीकरण की नितान्त आवश्यकता है।

विवाह के अवसर पर प्रायः बन्दूकें दागी जाती हैं। अनेक स्थितियों में कम–से–कम इस क्रिया का उद्देश्य बुरी आत्माओं या बुरे प्रभावों को दूर करना होता है या रहा है; और यही बात उस शोरगुल या तेज गाने के सम्बन्ध में कही जा सकता है, जो विवाह–संस्कार का मुख्य अंग होता है। डुरहम देश के ग्रामीण अंचलों में जब कन्या पक्ष की बारात चर्च की ओर प्रस्थान करती है, तो अनेक व्यक्ति बन्दूकों से लैश साथ–साथ चलते हैं, जो कन्या तथा सहबालियों के कानों के पास बार–बार बन्दूकें दागते जाते हैं, और क्लीवेलैण्ड के ग्यूसबरो क्षेत्र में चर्च से घर जाते समय नवविवाहित दम्पति के सिरों पर बन्दूकें दागी जाती है। मुसलमानी देशों में वर प्रायः तलवार, खंजर या पिस्तौल लेकर चलता है। वर या वधू के सर पर एक–दूसरे को काटती हुई तलवारें की जाती हैं; अथवा जब वधू का जुलूस उठता है, तो दो व्यक्ति वधू के दोनों ओर नंगी तलवारें लेकर चलते हैं। हिब्रू लोगों के वैवाहिक गीतों से पता चलता है कि विवाह में जब वधू का जुलूस चलता है तो तलवारें लिए हुए आदमी साथ–साथ चलते हैं, ''क्योंकि रात में बुरी आत्माओं का भय होता है।'' फ्राँस में पहले वर–वधू को विवाह के दिन दो तलवारों के 'क्रास' के नीचे से निकलना पड़ता था, और नारमैण्डा में जब विवाह–कक्ष में वर कन्या से मिलता था, तो वर के मित्रों

में से कोई कोड़े से आवाज करता था, जिससे वे आत्माएँ, जो वर–वधू को सताने वाली हों, दूर भग जाएं।

मुसलमान तथा इण्डो योरोपीय लोगों में विवाह के लिए यह आवश्यक तैयारी मानी जाती रही है या आजकल भी मानी जाती है कि वधू या वर–वधू दोनों को स्नान अवश्य करना चाहिए। प्राचीन ग्रीस में वर–वधू को विशेष झरने के पानी से ही स्नान करना होता था। स्काटलैण्ड के उत्तर–पूर्व में, विवाह के दिन पहले, शाम को ''पैर धोने'' का उत्सव होता था, जिसमें वर के घर पर उसके कुछ निकटतम मित्र एकत्र होते थे, एक जल से भरा हुआ बड़ा टब वर के सामने लाया जाता था, तथा वर के मोजे–जूते निकाल दिए जाते थे, और उसके पैर पानी में डूबाए जाते थे। यही प्रथा नारथम्बरलैण्ड में प्रचलित थी। वहाँ वधू के भी पैर धोए जाते थे, किन्तु एकान्त में। इसमें सन्देह नहीं कि वर या वधू के पैर धोने का कारण अंधविश्वास ही हो सकता है, लेकिन इस क्रिया के समारोह की विशेषता यह संकेत करती है कि इसका लक्ष्य शुद्धीकरण है।

बुरी आत्माओं या अन्य बुरे प्रभावों को दूर करने के आशय से सम्पन्न किए जाने वाले विवाह–संस्कारों के अतिरिक्त, कुछ ऐसे भी संस्कार किए जाते हैं जिनका उद्देश्य छल या धोखे से वर–वधू की रक्षा करना होता है। वधू का प्रतिनिधित्व किसी स्थानापन्न स्त्री द्वारा हो सकता है, जो भूत प्रेतों या कुदृष्टियों का ध्यान आकर्षित करने के लिए नकली वधू के रूप में प्रस्तुत होती है, और इस प्रकार असली वधू इन भूत–प्रेतों या बुरी दृष्टि के शिकार से बच जाती है। स्लाव, ट्यूटन और रोमन लोगों में यह सामान्य प्रथा है कि जब वर या उसका प्रतिनिधि वधू को उसके घर से लेने आता है, तो असली वधू के स्थान पर नकली वधू को पहले बिठा दिया जाता है। यह नकली वधू प्रायः कोई बदसूरत औरत या छोटी लड़की होती है अथवा कभी–कभी पुरुष भी होता है। ब्रिटानी में यह स्थानापन्न या नकली वधू पहले कोई छोटी लड़की होती है, फिर गृहस्वामिनी होती है और अन्त में आजी या दादी होती है। बवारिया में वधू का प्रतिनिधित्व औरतों की पोशाक पहने हुए दाढ़ी वाले पुरुष द्वारा कराया जाता है। जहाँ तक इस प्रथा के अर्थ का प्रश्न है, मैं सोचता हूँ कि इसकी एक से अधिक व्याख्याएँ की जा सकती हैं। वर को नकली वधू द्वारा धोखा देने का

प्रयत्न सम्भवतः उन संस्कारों में कोई एक हो जिनका इस अपहरण–विवाह के सन्दर्भ में पहले उल्लेख कर चुके हैं, जिसमें लड़की तथा उसके सम्बन्धी विवाह के विरोध का स्वाँग या नाटक करने के लिए वर के मार्ग में अनेक बाधाएँ प्रस्तुत करते हैं। भारत में, कन्या या वर अथवा दोनों से हानिप्रद बुरे प्रभावों को दूर करने के उद्देश्य से पहले कन्या या वर का प्रायः नकली विवाह वृक्ष या पशु के साथ किया जाता है। विशेष रूप से, वृक्षों के साथ विवाह की प्रथा सम्पूर्ण उत्तरी–भारत में व्यापक रूप से प्रचलित है, और ऐसा माना जाता है कि विवाह के बाद वृक्ष की तुरन्त मृत्यु हो जाती है, जो इस बात का संकेत है कि बुरे प्रभावों को वृक्षों में उतारने के उद्देश्य से इस प्रकार के विवाह किए जाते हैं, और यदि इन दुष्प्रभावों को वृक्षों की ओर न मोड़ा जाता, तो ये वर–कन्या के साथ सम्बन्धित रहते और उनको हानि पहुँचाते। ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं, जिनमें वर या कन्या की पोशाक से मिलती–जुलती पोशाक पहने हुए कई व्यक्ति विवाह के अवसर पर उपस्थित रहते हैं जिससे प्रतीत होता है कि कोई वधुएँ या कई वर हैं। यह कार्य बुरी आत्माओं को धोखा देने तथा वर या वधू की सुरक्षा करने की दृष्टि से किया जाता है। मिश्र में जब वर कन्या से मिलने के पूर्व मस्जिद जाता है, तो वह दो ऐसे मित्रों के बीच में चलता है, जो बिल्कुल वर की तरह की पोशाक पहने हुए होते हैं। फेज में, जब वधू अपने पति के घर ले जायी जाती है तो उसके साथ ऐसी पोशाकें पहने हुए कुछ औरतें होती हैं कि उनमें और वधू में अन्तर करना असम्भव होता है। ऐसा करने का उद्देश्य वधू की तन्त्र–मन्त्र तथा कुदृष्टि से रक्षा करना होता है। लिवानियाँ के लोगों में वधू की सखी–सहेलियाँ बिल्कुल वधू की तरह की ही पोशाक पहनती है, तथा मुझे यह बताया गया है कि यह प्रथा इंगलैण्ड के अन्य क्षेत्रों में भी पायी जाती है। वधू–सखियों, वधू–पुरुषों तथा वर–मित्रों का कार्य केवल वर–वधू के साथ रहना ही नहीं होता है, अपितु उनकी (वर–वधू की) है। बुरे प्रभावों से रक्षा करना होता है, भले ही वे वर या वधू की तरह के कपड़े न भी पहने हों; क्योंकि मनुष्य कुछ व्यक्तियों के बीच में अपने को सदा सुरक्षित अनुभव करता है। शेटलैण्ड में विवाह के एक रात पहले सबसे अच्छे व्यक्ति को वर के साथ सोना चाहिए।

वधू की बाह्य दुष्प्रभावों, विशेषतः कुदृष्टियों, से रक्षा करने की सबसे प्रभावकारी विधि है वधू को पिंजरे या कठघरे के अन्दर बन्द करके किसी जानवर की पीठ पर उसे पति के घर ले जाना। ऐसा उत्तरी मोरक्को में होता है। वहाँ हयमारक नामक विशेष वृक्ष की टहनियों से वधू का यह पिंजड़ा बनाया जाता है, जिसे लोग बुरी दृष्टियों से सुरक्षा कवच के रूप में विशेष अच्छा समझते हैं। इसी देश के कुछ अन्य भागों में तथा मुसलमानी देशों में सामान्य रूप से वधू जब वर के घर जाती है, तो उसका पूरा शरीर ढक दिया जाता है। घूँघट और पर्दे की प्रथा तो अन्य अनेक देशों में भी है। वधू के घूँघट का उल्लेख इंजील के पहले अध्याय 'जेनेसिस' में भी मिलता है। योरोप में तो यह प्रथा सामान्य रूप से प्रचलित रही है, तथा प्राचीन रोमन लोगों में इस प्रथा के प्रचलन का अनुमान इस बात से लगता है कि वहाँ सामान्य भाषा में घूँघट शब्द का अर्थ स्त्रि्री का विवाह होता है। समस्त सम्भावनाओं के साथ यह कहा जा सकता है कि इसका मुख्य लक्ष्य कुदृष्टियों से वधू की रक्षा करना था।

विवाह के अवसर पर ऊपर के बुरे प्रभावों से वर—वधू की रक्षा करना आवश्यक होता है। इसीलिए यहूदियों में विवाह सामियाने के नीचे होता है। स्कैडेनेवियाई देशों, फ्राँस और इंगलैण्ड में जब वर—वधू गिरजाघर में प्रार्थना के पश्चात् स्वस्तिवाचन करते हैं, तो उनके सरों पर एक वर्गाकार कपड़ा तान दिया जाता है जिसे अंग्रेजी भाषा में 'केयर क्लाथ' (सुरक्षावस्त्र) कहते हैं। विभिन्न स्लाव लोगों में वर अपना सर मेज पर ढकता है, और सीरिया में वधू अपना वर अपना सर भेड़ की खाल से उस समय तक ढके रहती है, जब तक विवाह—संस्कार नहीं सम्पन्न हो जाता है तथा कभी—कभी रात में भी वह इसे नहीं हटाती है। लेकिन वर और कन्या को नीचे के (भूमि के) खतरों से भी सुरक्षित रखना पड़ता हैं। मोरक्को में वर को भूमि में बैठने से बचना पड़ता है, जिससे वह किसी बुरे प्रभावों से प्रभावित न हो, कुछ अवसरों पर वर अपने चुने हुए व्यक्तियों या अविवाहित मित्रों द्वारा उठा कर ले जाया जाता है, और विवाह भर में वह अपने चप्पलों के तलवों को ऊपर की ओर ऐसे खीचे रहता जिससे वे गिरने न पाएँ। इसी प्रकार की तथा इससे भी अधिक सावधानी कन्या के सम्बन्ध में की जाती है। यदि किसी प्रकार कन्या का पैर भूमि से स्पर्श कर जाए,

तो वह बहुत दुर्भाग्यशालिनी मानी जायेगी। बिल्कुल इसी प्रकार की प्रथाएँ अन्य देशों में भी पाई जाती हैं। प्रायः वधू को उठा कर ले जाया जाता है। इस प्रथा के सम्बन्ध में कभी–कभी स्पष्ट रूप से कहा जाता है कि यह इस विचार से सम्बन्धित है कि वधू को नंगी भूमि पर पैर नहीं रखना चाहिए। वधू को घर की देहली पार कराकर ले जाने का बहुत प्रचलित रिवाज है। वेल्स में, वधू का देहली के ऊपर या उसके पास पैर रखना बहुत अशुभ माना जाता है। चीन के फूचाउ क्षेत्र में, वर के घर के स्वागत कक्ष की फर्श से लेकर जहाँ वधू की पालकी रखी जाती है, वहाँ तक लाल गलीचा बिछा दिया जाता है जिससे वधू के पैर भूमि से स्पर्श न कर पायें। इंगलैण्ड में यह प्रथा थी कि जहाँ वर–कन्या रहते थे वहाँ से लेकर चर्च तक भूमि पर जड़ी–बूटियाँ, फूल तथा सरपत बिखरा दिया जाता था। सण्डर लैण्ड में जहाँ कन्या रहती है।

वहाँ से चर्च तक के मार्ग पर लकड़ी के बुरादे का छिड़काव कर दिया जाता है। इसी बुरादे के ऊपर चल कर कन्या अपने घर से चर्च तक जाती है। पहले बुरादे के स्थान पर समुद्री रेत प्रयोग की जाती थी। यदि इस प्रथा का बिल्कुल ठीक–ठीक पालन होता है, तो वधू के घर से चर्च के द्वार तक के मार्ग पर बुरादा या समुद्री रेत बहुत अधिक मात्रा में फैला होना चाहिए, केवल साधारण छिड़काव नहीं। न्यूकैसल–आन–टिनी में वर–वधू के पावदान में पैर रखने के पहले उस पर बालू बिखरा दी जाती है। केण्ट के क्रैनबुक क्षेत्र में, जब नवविवाहित दम्पत्ति चर्च छोड़ते हैं, तो वे अपे पेशे के चिन्हों पर पैर रख कर चलते हैं। इस प्रकार बढ़ई लकड़ी के छीलन पर, कसाई भेड़ की खाल पर, मोची चमड़े की कतरन पर, तथा लोहार पुराने लोहे के टुकड़ों पर चलते हैं। विवाह में लाल गलीचों पर चलने की प्रथा तो हम सब लोगों में बहुत सुपरिचित है।

वर–वधू के लिए नीचे (भूमि) के खतरों का भय ही उनके पीछे जूता या जूते फेंकने की प्रथा के जन्म का कारण हो सकता है। यह प्रथा केवल इंगलैण्ड और स्काटलैण्ड में ही नहीं, अपितु डेनमार्क, राइन ट्रॉंसिलवेनिया के जिप्सियों में भी पाई जाती है। प्राचीन ग्रीस में भी स्पष्ट रूप से इसका अस्तित्व रहा है, जैसा कि एथेंस के अजायबघर में रखे एक अलंकृत पात्र में बने विवाह के चित्र से ज्ञात होता है। अधिकाँश दशाओं में तो वर–वधू के

जोड़े के पीछे जूता फेंका जाता है, लेकिन दोनों के पीछे यह पृथक्–पृथक् रूप से भी फेंका जा सकता है। इस प्रसंग में यह ध्यान रखना चाहिए कि वर वधू अथवा वर–वधू के पीछे जूता उसी समय फेंका जाता है, जब वे कहीं बाहर जाते हैं, जैसे जब वे चर्च जाते हैं या वहाँ से वापस होते हैं अथवा जब विवाह का नाश्ता हो चुकता है। जूता फेंकने की यह प्रथा उन प्रथाओं के साथ ही साथ पूरी की जाती है जो नीचे के दुष्प्रभावों से रक्षा करने के उद्देश्य से सम्पन्न की जाती है। इंगलैण्ड, डेनमार्क, जर्मनी तथा अन्य स्थानों में भी यात्रा पर या व्यापार अथवा शिकार के लिए जाने वाले व्यक्ति के पीछे जूता फेंकने की प्रथा पाई जाती है। ब्रैण्ड का कहना है कि इंगलैण्ड में, अनपढ़ लोगों में, जब कोई व्यक्ति किसी काम के लिए बाहर जाने लगता है, तो उसके शुभेच्छु उसकी कार्य–सिद्धि की कामना के लिए उसके पीछे पुराना जूता या चप्पल फेंकते हैं। इन तथ्यों से मुझे यह सूत्र प्राप्त होता है कि वर–वधू जो जूते या बूट पहने रहते थे, उनके अतिरिक्त पुराना जूता मूलतः मार्ग में उनकी अतिरिक्त जादुई सुरक्षा के लिए प्रयुक्त होता था। स्काटलैण्ड में ''सुखी चरण'' कह कर वर–वधू के प्रति शुभकामना व्यक्त करने की प्रथा थी।

विश्व के समस्त क्षेत्रों के विवाहों में शुद्धता या सुरक्षा से दृष्टि से किए जाने वाले संस्कार विवाहों के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। इन संस्कारों पर विचार करने पर रोचक प्रश्न सामने आता है कि वर–वधू को खतरे की स्थिति में क्यों समझा जाता है? मेरा उत्तर यह है कि वर–वधू नयी अवस्था में प्रवेश करते हैं; एम0 वान जेनेप के अनुसार विवाह ''पूर्णरूप से संस्कारों का मार्ग है; तथा नयी अवस्था से गुजरना या पहली बार कोई काम करना, केवल विवाह में ही नहीं अपितु अन्य अनेक सन्दर्भों में भी खतरे से खाली नहीं समझा जाता है। लेकिन इसके अतिरिक्त, यह भी दृष्टव्य है कि वर्तमान सन्दर्भ में स्वयं उस मुख्य कार्य की प्रकृति ही अनुमानित विनाश की ओर उन्मुख होती है जिसके लिए विवाह में स्वीकृति प्रदान की जाती है। यह बहु व्यापक धारणा है कि सम्भोग अपवित्र या दूषित कार्य है, तथा कुछ परिस्थितियों में अनिष्ट का रहस्यपूर्ण कारण है। मोरक्को के विवाहों के विस्तृत अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि वर या वधू को जिन शुद्धता या सुरक्षा से सम्बधित संस्कारों को पालन करना है, वे इस परिस्थिति पर निर्भर करते हैं कि वर या वधू का पहले कोई विवाह हो

चुका है या नहीं। यदि वर के पहले से पत्नी है या रह चुकी है, और यदि उससे बिल्कुल सम्बन्ध विच्छेद नहीं हुआ है, तो विवाह के संस्कार छोड़ दिए जाते हैं। यदि वधू विधवा है या किसी की तलाक दी हुई पत्नी है, तो बहुत से संस्कार कम कर दिए जाते हैं। अन्य देशों में भी कुमारी कन्या की अपेक्षा ऐसी स्त्री का विवाह कम औपचारिकताओं के साथ सम्पन्न होता है।

विशुद्ध रूप से जादुई विवाह–संस्कारों के अतिरिक्त, अन्य अनेक धार्मिक या अधार्मिक प्रकृति के ऐसे संस्कार प्रायः पुरोहित द्वारा पूरे कराए जाते हैं जिनका लक्ष्य दम्पत्ति को निश्चित रूप से लाभ पहुँचाना होता है अथवा अनिष्टों से उनकी रक्षा करना होता है। इनका अस्तित्व कुछ असभ्य लोगों तथा प्राचीन इण्डो–योरोपीय लोगों के विवाह–संस्कारों में पाया गया है। ऐसा माना गया है कि ईसाई लोगों में बहुत प्रारम्भ से ही विवाह–समारोह में उपयुक्त धार्मिक कर्म–काण्ड सम्बन्धित रहा है, यद्यपि ईसाई धर्म के संस्थापक ने, विवाह के सन्दर्भ में, किन्हीं विशेष समारोहों को निर्धारित नहीं किया है। विवाह एक धार्मिक संस्कार है– यह मान्यता चर्च में धीरे–धीरे विकसित हुई, लेकिन सन् 1563 तक बिना चर्च के स्वस्तिवाचन के भी विवाह वैध माना जाता था। जब इस वर्ष ट्रेण्ट–परिषद् ने यह आवश्यक माना कि विवाह पादरी के द्वारा या दो साथियों के समक्ष सम्पन्न होना चाहिए, तो इसे पवित्र धार्मिक संस्कार का स्तर प्राप्त हुआ। प्रोटेस्टेण्ट लोगों में विवाह को धार्मिक संस्कार के रूप में तो नहीं स्वीकार किया, लेकिन फिर भी वे इसे दैवी या ईश्वरीय संस्था के रूप में मानते ही रहे। रोमन कैथोलिकी की तुलना में प्रोटेस्टेण्टों में पुरोहिती विवाह कुछ कम अनिवार्य नहीं हुआ।

यह फ्राँसीसी क्राँन्ति ही थी जिसने इस सन्दर्भ में सबसे पहली बार विकल्प प्रदान किया। सन् 1791 में यह घोषित किया गया कि कानून विवाह को नागरिक अधिनियम द्वारा निर्धारित केवल एक नागरिक संविदा (समझौता) के रूप में स्वीकार करता है। इस ऐच्छिक कार्य में पूरोहिती स्वस्तिवाचन (Sacerotal benediction) को जोड़ा जा सकता है, यदि वर–वधू इसे उचित समझें। तब से अधिकाँश योरोपीय देशों के विधायन में कानूनी विवाह (सिविल मैरिज) शनैः–शनैः स्थान पाता गया। यद्यपि इनमें से अनेक देशों, जैसे इंगलैण्ड में

विवाह से सम्बन्धित पक्ष धार्मिक या कानूनी किसी भी पद्धति से विवाह कर सकते हैं, दोनों ही पद्धतियाँ कानून की दृष्टि में वैध हैं। ईसाई देशों में धार्मिक समारोह के साथ जो कानूनी महत्ता संलग्न कर दी गई है, वैसी बात यहूदी या मुस्लिम कानून में नहीं है।

9

एक विवाह और बहुपत्नीत्व

एक पुरुष की पत्नियों या एक स्त्री के पतियों की संख्या भिन्न–भिन्न लोगों में भिन्न–भिन्न होती है। कहीं पर एक पुरुष के एक स्त्री होती है जिसे एक विवाह (मोनोगेमी) कहते हैं, कहीं पर अनेक पुरुष और केवल एक स्त्री होती है जिसे बहुपति विवाह (पालियण्डी) कहते हैं, कहीं एक पुरुष और अनेक स्त्रियाँ होती है जिसे बहुपत्नी विवाह (पालीजिनी) कहते हैं, और कहीं अनेक पुरुषों में अनेक स्त्रियाँ होती हैं जिसे समूह विवाह (ग्रुप मैरिज) कहते हैं। अंग्रेजी के ''पालीजिनी'' (बहुपत्नी विवाह) शब्द के लिए लोकप्रिय शब्द ''पालीगेमी'' है जिसका बिल्कुल निश्चित अर्थ है दो से अधिक पति या पत्नी, न कि एक से अधिक पत्नी।

असभ्य प्रजातियों के निम्न आखेटजीवी तथा भोजन–संग्रह करने वाले लोगों में बहुपत्नी विवाह बहुत अधिक व्यापक स्तर पर प्रचलित नहीं है; हाँ, कुछ आस्ट्रेलिया की जनजातियों तथा दक्षिणी अफ्रीका के बुशमैन लोगों में अधिक प्रचलित है। कृषिजीवी लोगों में भी इस प्रथा का अधिक प्रचार नहीं है। दूसरी ओर, बहुसंख्यक आखेटजीवी तथा कृषिजीवी जनजातियाँ निश्चित रूप से एक विवाह–प्रथा का पालन करने वाली मानी जाती हैं। अधिकांशतः उत्तरी अमेरिका में पाये जाने वाली उच्च आखेटजीवी जनजातियों में बहुपत्नी विवाह अधिक प्रचलित है, यद्यपि इनमें भी अधिकाँश जनजातियाँ इस प्रथा का यदाकदा ही प्रयोग करती हैं, किन्तु पूर्णरूप से एक विवाह की प्रथा भी बहुत कम पायी जाती है, यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता है कि वे लोग इस प्रथा से पूर्ण अपरिचित हैं। पशुपालक लोगों में मुझे कोई ऐसी जनजाति नहीं मिली है जिसे निश्चित रूप में एक विवाही (मोनोगेमस) कहा जा सके। आखेटजीवी तथा अधिकांश आदिम कृषिजीवी लोगों की अपेक्षा पशुपालक तथा उच्च कृषिजीवी दोनों जनजातियों में बहुपत्नी विवाह–प्रथा अधिक प्रचलित है। यह बात अफ्रीकी जनजातियों के सम्बन्ध में विशेष रूप से उपयुक्त है। अफ्रीका में तो बहुपत्नी–प्रथा का सर्वाधिक प्रचलन है– वहाँ बहुपत्नी प्रथा का अनुसरण

करने वालों की संख्या तो अधिक है ही, साथ–ही–साथ वहाँ के लोग पत्नियों की संख्या की दृष्टि से भी बहुत आगे हैं। बेनिन के राजा की पत्नियों की संख्या के सम्बन्ध में विभिन्न लेखकों का भि मत है; किन्तु न्यूनतम संख्या 600 है तथा अधिकतम 40000 है। कहा जाता है कि उसने अपनी कुछ पत्नियाँ उन लोगों को दे दी थीं, जिन्होंने उसकी सेवा अच्छी प्रकार से की थी। अशाण्टी के राजा के पत्नियों की संख्या कानून द्वारा 3,333 तक सीमित कर दी गई थी, लेकिन यह ज्ञात नहीं कि उसे इस संख्या को पूरा करना पड़ता था या नहीं। यूगाण्डा के राजा तथा लोआँगों के राजा को 7000 पत्नियाँ रखने की स्वीकृति प्राप्त थी। मेरी जानकारी के अनुसार बहुपत्नी–प्रथा के अन्तर्गत एक पुरुष की पत्नियों की यह सबसे बड़ी संख्या है।

जहाँ बहुपत्नी–प्रथा है, वहाँ यह सामान्य नियम है कि एक पत्नी को अन्य अवशेष पत्नियों की तुलना में ऊँचा पद प्राप्त होता है अथवा सबमें एक पत्नी प्रमुख मानी जाती है, तथा अधिकाँश अवस्थाओं में सर्वप्रथम विवाह की पत्नी को ही यह गौरव प्राप्त होता है। सम्भवतः इसका कारण यह है कि या तो उन लोगों में एक विवाह का नियम है अथवा पहले रहा था तथा बहुपत्नी विवाह या तो नवीनता है अथवा अपवाद है। प्रथम पत्नी तथा बाद की पत्नियों के पद का अन्तर प्रायः ही इतना अधिक नहीं है जिससे अधिकारी विद्वान लोग प्रथम पत्नी को वास्तविक या वैध पत्नी के रूप में प्रस्तुत करते हैं तथा अन्य पत्नियों को रखैल मानते हैं; लेकिन ऐसी अनेक या अधिकाँश अवस्थाओं में हमारा विवाह को बहुपत्नीत्व की संज्ञा देना तथा यदि रखैल शब्द केवल लैंगिक सम्बन्ध की स्वीकृति के भाव तक ही सीमित है तो रखैलों को हीन कोटि की पत्नियाँ मानना न्यायसंगत है।

प्राचीन आदिम सभ्यता वाले अधिकाँश लोगों में पायी जाने वाली वास्तविक बहुपत्नीत्व प्रथा से उक्त रूप से बहुपत्नीत्व अथवा एक प्रकार की रखैल–प्रथा का भेदकरण बहुत कठिन है। चीन में कानूनी मुख्य पत्नी के अतिरिक्त तथा कथित ''शिष्टाचार'' की पत्नी या कानूनी रखैल होती है; जब कि वहाँ का कानून प्रथम पत्नी के जीवन काल में किसी अन्य स्त्री को पूर्ण अर्थ में पत्नी के रूप में ग्रहण करने को निषेध करता है। जापान में चीन की तरह की रखैल–प्रथा का अस्तित्व पहले वैध संस्था के रूप में था, लेकिन सन्

1880 की अपराध–संहिता के लागू होने के साथ ही इसका उन्मूलन हो गया था, किन्तु दीर्घकाल से प्रतिष्ठित यह प्रथा किसी सीमा तक वहाँ आज भी देखने को मिल सकती है। प्राचीन हिब्रू लोगों में विभिन्न पत्नियों की कानूनी स्थिति में कोई अन्तर नहीं था, यद्यपि पत्नी तथा दास रखैल में भेद किया जाता था। इसके अतिरिक्त उनमें एक पुरुष की पत्नियों की संख्या के सम्बन्ध में कोई सीमा नहीं थी। हम सोलोमन के सम्बन्ध में पढ़ते हैं कि उसके ''सात सौ पत्नियाँ, रानियां, तथा रखैलें थी। योरोप के यहूदियों में बहुपत्नीत्व अभी मध्ययुग तक प्रचलित तथा, मुसलमानी देशों के यहूदियों में यह प्रथा आज भी प्रचलित है। अरब में मुहम्मद साहब ने एक पुरुष की पत्नियों की संख्या सीमित कर दी थी– उनका आदेश था कि एक पुरुष गुलाम रखैलें तो जितनी रख सकता हो उतनी रखे, किन्तु कानूनी पत्नियाँ वह चार से अधिक नहीं रख सकता। हाँ, स्वयं पैगम्बर को छूट थी कि वह जितनी चाहें उतनी पत्नियाँ रख सकते थे। जहाँ एक पुरुष के दो या दो से अधिक पत्नियाँ हों, वहाँ पहले विवाह की पत्नी को सामान्यतः सर्वोच्च पद प्राप्त होता है तथा उसे ''महान् महिला'' कहते हैं। लेकिन वस्तु स्थिति यह है कि मुसलमानी देशों के बहुसंख्यक पुरुष, एक पत्नी–प्रथा का ही पालन करते हैं – जैसा समस्त तो नहीं, किन्तु अधिकांश उन अन्य देशों में होता है, जहाँ बहुपत्नीत्व की अनुमति है।

अत्यन्त सीमित रूप में इण्डोयोरोपीय लोगों में भी बहुत पत्नीत्व का प्रचलन रहा है। वैदिक युगीन भारतीय लोगों में यह प्रथा सम्भवतः नियम के रूप में, राजाओं तथा सम्पत्तिशाली सामन्तों तक सीमित थी। वर्तमान काल में हिन्दू कानून बहुपत्नीत्व पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाता है, लेकिन अधिकाँश जातियाँ, विशेष परिस्थितियों के अतिरिक्त, अपने सदस्यों को एक से अधिक पत्नियाँ रखने के लिए मना करती हैं। यदि किसी पुरुष की प्रथम पत्नी बंध्या या बाँझ हो, अथवा, किसी असाध्य रोग से ग्रस्त हो या अशक्त हो, तो वह दूसरी पत्नी रख सकता है। स्लाव और ट्यूटन देशों में कम–से–कम सरदारों और सामन्तों में, तो बहुपत्नीत्व–प्रथा प्राप्त ही होती है। एंग्लो–सैक्सन लोगों में इस प्रथा के प्रत्यक्ष प्रमाण अवश्य नहीं मिलते हैं; लेकिन यह नहीं कहा जा सकता है कि वे इस प्रथा से परिचित ही नहीं थे; क्योंकि उनकी कुछ कानून की पुस्तकों में इसके सम्बन्ध में निषेध

किया गया है। आयरलैण्ड के प्राचीन लोगों में हमें किसी–किसी राजा या सरदार के दो पत्नियां मिलती हैं। प्राचीन ग्रीस के सम्बन्ध में भी थोड़ा सन्देह हो सकता है कि वहाँ केवल एक पत्नी–प्रथा ही एकमात्र मान्य विवाह की प्रणाली नहीं थी, रखैल–प्रथा तो एथेंस में सब कालों में वर्तमान रही है तथा जनमत ने शायद ही इस पर कभी प्रतिबन्ध लगाया हो। रोमन विवाह कठोरतापूर्वक एक विवाही था।

यह विचार करते हुए कि ग्रीस और रोमन में एक विवाह प्रथा विवाह की एकमात्र वैध प्रणाली थी, यह नहीं कहा जा सकता है कि पश्चिमी देशों में ईसाइयत ने अनिवार्य एक विवाह–प्रथा को प्रचलित किया। वस्तुतः, यद्यपि न्यूटेस्टामेण्ट एक विवाह–प्रथा को सामान्य या आदर्श विवाह के रूप में स्वीकार करता है; किन्तु यह बिशप और डीकन के अतिरिक्त अन्य लोगों के लिए स्पष्ट रूप में बहुपत्नित्व का निषेध नहीं करता है। प्रारम्भिक शताब्दियों में चर्च की किसी कौंसिल ने बहुपत्नित्व का विरोध नहीं किया था, तथा पेगन–युग (मूर्तिपूजा–युग) में जिन देशों में यह प्रथा प्रचलित थी, उनमें वहाँ के राजाओं ने बहुपत्नीत्व के मार्ग में कोई अवरोध नहीं प्रस्तुत किया। 16 वीं शताब्दी के मध्य में, आयरलैण्ड के राजा डायरमेट के दो पत्नियाँ और दो रखैलें थी, तथा मेरो विंजियन राजा प्रायः अनेक पत्नियाँ रखते थे। परवर्ती काल में, हेस्से के फिलिप तथा प्रूसिया के फ्रेडरिक विलियम द्वितीय ने लूथरन पादरी की अनुमति से दो–दो विवाह किए थे। सन् 1650 में, वेस्टफेलिया की शान्ति के पश्चात, जब वर्षों के अनवरत युद्ध के कारण जनसंख्या बहुत कम हो गई थी, तब नूरेम्बर्ग में फ्रैंकिश क्रीस्टैग ने यह प्रस्ताव पारित किया था कि उस समय से प्रत्येक पुरुष को दो स्त्रियों से विवाह करने की अनुमति होनी चाहिए। कुछ ईसाई सम्प्रदायों ने बहुपत्नीत्व का पर्याप्त उत्साह से समर्थन किया है। सन् 1531 में, मुन्स्टर में, ऐनबैपटिस्ट ने खुले आम यह प्रवचन किया था जो सच्चा ईसाई होना चाहता है, उसे अनेक स्त्रियां रखना चाहिए। यह तो विश्वविदित है कि मारमोन बहुपत्नीत्व को दैवी संस्था के रूप में स्वीकार करते हैं।

इस बात पर बल दिया गया है कि एकपत्नीत्व स्वाभाविक विवाह–प्रणाली है, क्योंकि संसार में स्त्रियों और पुरुषों की संख्या समान नहीं है। लेकिन यह तर्क निराधार है; क्योंकि

स्त्री और पुरुषों का अनुपात विभिन्न लोगों में बहुत विषम है—कहीं—कहीं तो इस अनुपात में बहुत अन्तर है। फिर भी, इसमें कोई सन्देह नहीं है कि बहुपत्नित्व का मुख्य कारण विवाह—योग्य स्त्रियों की अधिकता है तथा एकपत्नित्व का प्रमुख कारण अपेक्षाकृत विवाह—योग्य स्त्रियों की कमी है। मेरे विचार से यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि जब कभी किसी असभ्य जनजाति में स्त्रियों की उल्लेखनीय तथा न्यूनाधिक रूप में स्थायी बहुलता हो जाती है, तो वहाँ बहुपत्नित्व को स्वीकृति प्राप्त हो जाती है। इस बात पर विश्वास करना कठिन है कि यदि किसी असभ्य जनजाति में एकपत्नित्व की प्रथा के प्रचलन से बहुसंख्यक स्त्रियाँ कुमारी मरने के लिए विवश हो रही होगी तो भी उसने इस प्रथा को लागू रखा होगा। यद्यपि स्त्रियों की बहुलता से बहुपत्नित्व का प्रचलन होता अवश्य है, किन्तु यह इसका एकमात्र कारण नहीं माना जा सकता है। निस्सन्देह, स्त्रियों की बहुलता बहुपत्नित्व को सरल या सम्भव बना देती है, लेकिन इसका प्रत्यक्ष कारण है एक से अधिक स्त्रियों को रखने की पुरुष की इच्छा। इस इच्छा के अनेक कारण हैं।

सबसे पहला कारण यह है कि सरल लोगों में से बहुत लोग ऐसे हैं, जिनमें एक पत्नी होने के कारण दीर्घ अवधि तक पुरुष को इन्द्रिय—निग्रह की आवश्यकता होती है। पुरुष प्रत्येक मास में केवल मासिक धर्म के दिनों में ही अपनी पत्नी से पृथक् नहीं रहता है, अपितु सम्पूर्ण गर्भकाल तथा प्रसव होने के कुछ समय बाद तक भी पुरुष उसके साथ यौन—क्रिया नहीं कर पाता है; क्योंकि गर्भिणी स्त्री अस्वच्छ मानी जाती है, तथा जब तक बच्चा माँ का दूध पीता रहता है, तब तक भी ऐसी स्त्री के साथ सम्भोग करना मना होता है। चूंकि बच्चे के दूध छूटने में दो या तीन वर्ष तथा कभी—कभी मुख्यतः मुलायम भोजन और पशु के दूध के अभाव में पाँच या छह वर्ष लगते हैं, अतः पति के लिए इस अवधि में सम्भोग का निषेध अत्यन्त कठोर और कष्टदायक हो जाता है।

बहुपत्नीत्व के प्रमुख कारणों में एक कारण स्त्रियों के यौवन और सौन्दर्य का वह आकर्षण है जो पुरुषों पर प्रभाव डालता है। जब किसी पुरुष की प्रथम पत्नी पुरानी होने लगती है, तो वह प्रायः नई पत्नी लाता है। बहुपत्नीत्व का तीसरा कारण मनुष्य की विविधता की रुचि है। मनुष्य की यौन—इच्छा किसी एक ही स्त्री के दीर्घकालीन सहवास से

मन्द पड़ जाती है तथा नयी स्त्री के सम्पर्क में उत्तेजित होती है। एक बार मेरी उपस्थिति में कुछ अंग्रेज महिलाओं ने मोरक्को के एक दण्डाधिकारी से पूछा था कि योरोपीय लोगों की तरह मूर लोग अपने को एक पत्नी से संतुष्ट क्यों नहीं करते हैं? उसने उत्तर दिया था, ''कोई व्यक्ति सदा मछली ही क्यों नहीं खाता है?'' एक पुरुष एक से अधिक पत्नियों की इच्छा इसलिए भी कर सकता है कि वह सन्तान, सम्पत्ति, और सत्ता के लिए इच्छुक होता है। पत्नी का बंध्य होना अथवा केवल लड़की का ही पैदा होना भी पूर्व में बहुपत्नीत्व का एक प्रमुख कारण है। जापान में रखैल–प्रथा की कानूनी मान्यता का मुख्य कारण यह था कि वहाँ वंशानुगत सम्प्रदाय चलाए रखने के लिए सन्तान का होना नितान्त आवश्यक होता था। हिन्दुओं में निःसन्तान मरना बहुत बड़ा दुर्भाग्य माना जाता है, इसलिए वहाँ जब एक पत्नी से सन्तान नहीं होती, तो लोग दूसरी पत्नी लाते हैं। फारस और मिश्र में जब पहली पत्नी से सन्तान नहीं होती है, तो लोग नई पत्नी लाते हैं। लेकिन इसका आशय यह नहीं है कि बहुपत्नीत्व केवल सन्तान–प्राप्ति के कारण प्रचलित है। आदिम या बर्बर समाजों में लोग अधिक सन्तानों की उपलब्धि के लिए अनेक पत्नियाँ रखते हैं; क्योंकि उन लोगों में जिस व्यक्ति का परिवार जितना बड़ा होता है, उसका उतना ही अधिक सम्मान होता है, तथा अन्य लोग उतना ही अधिक भयभीत रहते हैं।

इतना ही नहीं, बहुपत्नीत्व से पत्नियों के श्रम के कारण पुरुष की भौतिक सुख–सुविधाओं तथा सम्पत्ति में वृद्धि होती है। पत्नी–प्रेमी जुलू अपनी प्रिय प्रथा बहुपत्नीत्व के समर्थन में तर्क करते हुए प्रायः यह प्रश्न पूछता है, ''यदि मेरे केवल एक पत्नी है, तो उसके बीमार होने पर मेरे लिए भोजन कौन बनाएगा?'' पूर्व–मध्य अफ्रीका–निवासी के जितनी अधिक पत्नियां होती हैं, वह उतना ही अधिक अमीर समझा जाता है।'' ये पत्नियाँ ही हैं जो उसका पालन–पोषण करती हैं। वे उसका खेती जोतने, आटा पीसने खाना बनाने का काम करती हैं। उन्हें उच्चतर स्तर का नौकर माना जा सकता है जिनमें ब्रिटानी के पुरुष नौकरों तथा स्त्री नौकरों की समस्त विशेषताएँ एक साथ सन्निहित होती हैं– जो पति का सब काम तो करती हैं, लेकिन वेतन नहीं मांगती हैं। श्रमिकों के रूप में पत्नियों की उपयोगिता के कारण बहुपत्नीत्व प्रथा की वृद्धि आर्थिक संस्कृति के उच्चतर स्तरों में प्राप्त

होती है, जिसके सम्बन्ध में ऊपर विचार किया जा चुका है। लेकिन आर्थिक प्रगति ऐसी है कि इन समाजों में सम्पत्ति का असमान वितरण हो रहा है– कुछ के पास अधिक सम्पत्ति है और अधिक लोगों के पास बहुत कम है। चूंकि पत्नी प्राप्त करने के लिए पुरुष को कन्या–मूल्य चुकाना पड़ता है, अतः केवल मुट्‌ठी भर सम्पत्ति वाले लोगों के पास तो अनेक पत्नियाँ हो जाती हैं, लेकिन अन्य लोग सम्पत्ति के अभाव में एक भी पत्नी नहीं रख पाते हैं। बहुसंख्यक पत्नियों से केवल पुरुष की सम्पत्ति में ही वृद्धि नहीं हो सकती है, अपितु अनेक सन्तानों के प्रभाव के अतिरिक्त, उसकी सामाजिक महत्ता, प्रतिष्ठा, और सत्ता भी ऊँची होती है, तथा इनसे वह विदेशियों और अतिथियों के प्रति उदार रहने तथा उनके लिए द्वार खुले रखने में समर्थ रहता है, और इनके कारण वह अन्य अनेक परिवारों से सम्बन्ध भी स्थापित रख पाता है। इस प्रकार यदि बहुपत्नीत्व को महानता से सम्बन्धित किया जाता है, तो यह प्रतिष्ठा प्रशंसा के योग्य मानी जाती है, जब कि एकविवाह प्रथा को निर्धनता का परिणाम माना जाता है, तो इसे (एकविवाह को) हीनता या निन्दा का विषय माना जाता है। बहुपत्नीत्व न्यूनाधिक रूप में निश्चित वर्गों की विशेषता बन गई है, तथा कुछ लोगों में तो सरदारों या सामन्तों के अतिरिक्त अन्य सामान्य व्यक्तियों को इसके (बहुपत्नीत्व के) के लिए अनुमति ही नहीं होती है।

इसके साथ–साथ, बहुपत्नीत्व से अनेक हानियां भी हैं। यह बहुत व्ययसाध्य कार्य हो सकता है। हम प्रायः सुनते हैं कि पत्नी के लिए जो मूल्य चुकाना पड़ता है, अथवा अनेक पत्नियों के भरण–पोषण में जो कठिनाई होती है, उसके कारण पुरुष की एकपत्नी नियम को ही पालन करना चाहिए। इस प्रकार की कठिनाई वहाँ बहुत सरलता से उठ खड़ी होती है, जहाँ जीविका का आधार आखेट होता है तथा स्त्रियों के श्रम के उपयोग का क्षेत्र सीमित होता है, अथवा जहाँ कृषि का उत्पादन बड़े परिवार के भरण–पोषण के लिए अपर्याप्त होता है। इससे स्पष्ट होता है कि सभ्यता की कुछ उच्चतर अवस्थाओं की अपेक्षा निम्नतम अवस्थाओं में बहु पत्नीत्व दुष्प्राप्य ही है। विभिन्न पत्नियों के पारस्परिक लड़ाई–झगड़े के बचाने के उद्देश्य से प्रत्येक पत्नी के लिए पृथक्–पृथक् निवास स्थान की आवश्यकता होती है, अतः अनेक पत्नियों के रखने पर प्रायः खर्चे बहुत बढ़ जाते हैं। स्त्रियों

की ईर्ष्या बहुपत्नीत्व के मार्ग में विशेष बाधक है–या तो पति स्वयं अपने हित की दृष्टि से बहुपत्नीत्व के दुष्परिणामों से आतंकित रहता है, अथवा पत्नी स्वयं पति को दूसरी पत्नी लाने के लिए रोकती है, या पति अपनी पत्नी की भावनाओं का बहुत आदर करता है अथवा उसे अत्यधिक प्यार करता है जिसके कारण दूसरी पत्नी या पत्नियाँ नहीं लाता है। यह सत्य है कि अनेक अवस्थाओं में ईर्ष्या या प्रतिद्वन्द्विता अनेक पत्नियों वाले परिवारों की शान्ति–भंग करने वाली नहीं मानी जाती है अथवा अनेक क्षेत्रों में स्त्रियाँ स्वयं बहुपत्नीत्व को स्वीकार करती हैं, क्योंकि इस व्यवस्था में उनको अनेक लाभ प्राप्त होते हैं– यह लाभ चाहे श्रम–विभाजन का हो या पारिवारिक प्रतिष्ठा अथवा प्रथम पत्नी की सत्ता की वृद्धि का हो, या विवाहित स्त्रियों को अधिक स्वतंत्रता प्राप्त होने का हो। ब्रिटिश पूर्वी अफ्रीका के किक्यू सरदार की प्रमुख पत्नी ने श्रीमती रूटलेज से अंग्रेज महिलाओं से यह बताने के लिए कहा कि उसके देश में स्त्रियाँ पति का यथासम्भव अधिक से अधिक पत्नियाँ रखना पसन्द करती हैं। दक्षिणी अफ्रीका की ग्रोकालो स्त्रियों के सम्बन्ध में लिंविंगस्टोन कहता है : इंग्लैण्ड में एक पुरुष केवल एक स्त्री से विवाह कर सकता है, यह सुनकर अनेक स्त्रियों ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा कि वे ऐसे देश में नहीं रहेंगी। वे कल्पना नहीं कर सकीं कि अंग्रेज स्त्रियाँ कैसे एकपत्नी प्रथा को पसन्द कर पाती हैं, क्योंकि उनके अनुसार प्रत्येक प्रतिष्ठित व्यक्ति को, अपनी सम्पत्ति के प्रमाण के रूप में, अनेक पत्नियाँ रखना चाहिए। ''लेकिन बहुधा हमें ज्ञात होता है कि बहुपत्नीत्व कलह और पारिवारिक संकट का कारण होता है।'' एक बार जब धर्म प्रचारक विलियम ने एक फिजी स्त्री से पूछा कि वह तथा वहाँ अन्य अनेक स्त्रियाँ बिना नाक की क्यों हैं, तो उसने उत्तर दिया था : ''ऐसा पत्नियों की बहुलता के कारण है; ईर्ष्या के कारण घृणा उत्पन्न होती है, तथा शक्तिशाली स्त्री उस स्त्री के बाल काटती है या उसकी नाक काट लेती है जिससे उसे घृणा होती है।'' मोरक्को में मैंने कुछ बेदयूं स्त्रियों से बात–चीत की, तो उन्होंने एक पत्नीत्व की बहुत सराहना की थी। उन्होंने कहा ''हम लोगों में एक तम्बू में दो स्त्रियाँ एक–दूसरे का मुँह नोच डालती हैं तथा एक–दूसरे के बाल पकड़ कर घसीटती हैं।''

उच्चतम स्तर की संस्कृतियों में एकविवाही प्रथा की ओर पुनः वापस जाने की प्रवृत्ति के अनेक कारण खोजे जा सकते हैं। आजकल लोगों में सन्तान के लिए इच्छा कम तीव्र हो गई है। जहाँ पहले बड़ा परिवार जीवन–संघर्ष के लिए सहायक माना जाता था, वहाँ उसे अब असह्य भार समझा जाता है। अब किसी पुरुष के केवल रक्त–सम्बन्धी ही उसके मित्र नहीं होते हैं, तथा उसकी सम्पत्ति और उसका प्रभाव उसकी पत्नियों और उसके बच्चों की संख्या पर नहीं आधारित है। अब एक पत्नी केवल एक श्रमिक नहीं रही है तथा बहुत से शारीरिक कार्यों का स्थान घरेलू या पालतू पशुओं तथा यन्त्रों और औजारों ने ले लिया है। प्रेम का संवेग अब विशेष परिष्कृत हो गया है, और परिणामतः अधिक स्थायी हो गया है। सुसंस्कृत मस्तिष्क के लिए नारी के प्रति आकर्षण का माध्यम केवल उसका यौवन और सौन्दर्य ही नहीं रहा है, अपितु सभ्यता ने नारी सौन्दर्य को जीवन के नए क्षेत्र प्रदान किए हैं। अब नारी की भावनाओं का पर्याप्त समादर किया जाता है। इसके अतिरिक्त अब स्त्रियों को उच्च शिक्षा प्रदान की जाती है तथा सभ्यता के अन्य वरदानों ने उसे, पति की सहायता के बिना, सुख–सुविधापूर्वक अपना जीवनयापन करने में समर्थ बना दिया है।

अब प्रश्न यह होता है कि क्या, हम लोगों में, भविष्य में विवाह का मान्य रूप एकविवाह ही रहेगा? इस प्रश्न का उत्तर विभिन्न प्रकार से दिया गया है। अनेक लेखक ऐसे हैं, जिन्होंने इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक दिया है। डा० लीबोन का विचार है कि पश्चिमी सभ्यता के कानून आगे या पीछे बहुपत्नीत्व को कानूनी स्वीकृति प्रदान करेंगे; तथा प्रोफेसर इहरेनफेल्स तो यहाँ तक मानते हैं कि आर्यप्रजाति के संरक्षण के लिए इसे अंगीकार करना आवश्यक है। जहाँ तक मेरा विचार है, मैं निस्संकोच दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि यदि मनुष्य–जाति उसी दिशा में प्रगति करती है, जिसक ओर आज तक आगे बढ़ी है; यदि अत्यधिक प्रगतिशील समाज में एकविवाह–प्रथा को जन्म देने वाले कारण सतत विकासमान शक्तियों के साथ क्रियाशील बने रहेंगे, यदि स्त्रियों की भावनाओं के विशेष आदर, तथा विधायन में स्त्रियों के प्रभाव में वृद्धि होगी, तो एकविवाह के कानूनों में परिवर्तन होने की कोई सम्भावना नहीं है। उस समय की कल्पना करना निश्चित ही

कृठिन है, जब पश्चिमी सभ्यता एक पुरुष के साथ अनेक स्त्रियों के विवाह को कानूनी स्वीकृति प्रदान करेगी।

10

बहुपति विवाह तथा समूह विवाह

बहुपत्नीत्व की अपेक्षा बहुपतित्व, या एक स्त्री के साथ अनेक पुरुषों का विवाह, विवाह का अधिक दुष्प्राप्य रूप है। इसके छुट–पुट उदाहरण तो विश्व के विभिन्न भागों में देखने को मिल जाते हैं, लेकिन केवल थोड़े ऐसे हैं, जहाँ के पर्याप्त बहुसंख्यक लोगों द्वारा बहुपत्नीत्व–प्रथा का पालन होता है या हुआ है। इनमें सर्वाधिक उल्लेखनीय क्षेत्र हैं तिब्बत तथा भारत के कुछ उल्लेखनीय जिले। तिब्बत में बहुपतित्व अनन्तकाल से प्रचलित चला आ रहा है तथा आज भी सामान्य रूप में वर्तमान है। नियमानुसार, विभिन्न पति भाई होते हैं, तथा जब वह किसी स्त्री से विवाह करता है, तो सम्भवतः अन्य भाइयों का विवाह भी उसी के साथ मानलिया जाता है, बशर्ते वे स्वयं उस विवाह में साझीदार बनना चाहें। कभी–कभी भाइयों के अतिरिक्त अन्य निकट सम्बन्धी, या, बहुत कम अवसरों पर असम्बन्धी व्यक्ति भी सम्मिलित रूप में एक स्त्री से विवाह कर लेते हैं। समस्त पति एक सामान्य पत्नी के साथ एक ही गृहस्थी के सदस्य के रूप में साथ–साथ रहते हैं। भ्रातृीय बहुपतित्व हिमालय–प्रदेश के विस्तृत क्षेत्रों, असम से कश्मीर के अधीन क्षेत्रों में, मुख्य रूप से तिब्बत–निवासियों से सम्बन्धित लोगों में, प्रायः देखने को मिलता है। बहुपतित्व का दूसरा बड़ा केन्द्र दक्षिणी भारत है। नीलिगिरि पहाड़ियों के टोडा लोगों में यह प्रथा विशेष रूप से पाई जाती है। जब एक लड़के का विवाह किसी लड़की के साथ होता है, तो उसी समय वह लड़की उस लड़के के अन्य भाइयों की पत्नी हो जाती है, और यदि विवाह के पश्चात कोई भाई पैदा होता है, तो वह भी अपने बड़े भाइयों की तरह उसी स्त्री में साझीदार बन जाता है। लेकिन कुछ ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जिनमें विभिन्न पति भाई न होकर, एक ही पीढ़ी तथा एक ही गोत्र के सदस्य मात्र होते हैं। सन् 1860 में, जब तक ब्रिटिश गवर्नर ने बहुपतित्व प्रथा पर प्रतिबन्ध नहीं लगाया था, तब तक लंका के समस्त आन्तरिक क्षेत्रों में यह प्रथा प्रचलित थी; अनेक उदाहरण ऐसे थे, जिनमें एक स्त्री के तीन या चार अथवा इससे भी अधिक पति होते थे, जो विशेष रूप से ऊँची जातियों में अधिकाँशतः भाई होते थे।

कोचीन, मालाबार और ट्रावनकोर के नायर लोगों में हमें अ–भ्रातृीय बहुपतिविवाह–प्रथा मिलती है जिसे पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ तथा इसके बाद के अनेक यात्रियों ने प्रमाणित किया है। नायरों की प्रथा के अनुसार, रजस्वला होने के पूर्व प्रत्येक लड़की का विवाह संस्कार होता था जिसका एक आवश्यक कर्म यह होता था कि लड़की के गर्दन में सोने का एक छोटा पत्तर ''साँकेतिक पति'' द्वारा बाँधा जाता था। यह तथाकथित पति प्रथा के अनुसार अपना नेग (फीस) पाने के बाद अपने घर चला जाता था, उसे उस लड़की के साथ दाम्पत्य अधिकार नहीं प्राप्त होता था। तत्पश्चात्, लड़की को अपनी इच्छानुसार किसी भी ब्राह्मण या नायर के साथ सहवास करने का अधिकार प्राप्त होता था। सामान्यतः उसके अनेक प्रेमी होते थे, जो आपस में समझौता करके उसके साथ सहवास करते थे। इस स्त्री के भरण–पोषण का व्यय सब मिल–जुलकर वहन करते थे, लेकिन वह उन लोगों के साथ न रहकर अलग रहती थी, तथा उससे उत्पन्न बच्चे उसके रक्त–सम्बन्धियों के माने जाते थे। मैं इन पुरुषों को पति न कहकर प्रेमी कहता हूँ; क्योंकि नायर लोगों के इस बहुपतित्व को गैर कानूनी दृष्टिकोण से भी विवाह की संज्ञा देना बहुत कठिन है– इसका कारण यह है कि इस प्रथा में पति सर्वथा बन्धन–मुक्त तथा अत्यधिक अस्थायी होते थे, वे कभी स्त्री के साथ नहीं हरते थे, तथा कुछ विवरणों के अनुसार वे पिता के कर्त्तव्यों की पूर्ण रूप से उपेक्षा करते थे।

प्रायः बहुपत्नीत्व की तरह ही, बहुपतित्व प्रथा भी एक विवाह की दिशा में परिष्कृत हो रही है। जैसा बहुपत्नीक परिवारों में प्रथम विवाह की पत्नी प्रमुख होती है, उसी प्रकार बहुपति परिवारों में प्रथम पति ही प्रायः या अधिकाँशतः प्रमुख पति होता है। प्रथम पति के साथ जब कोई अन्य व्यक्ति उसकी पत्नी का साझीदार बनता है, तो उसे प्रायः उसे द्वैतीयक पति कहते हैं, तथा प्रथम पति की अनुपस्थिति में वही गृह स्वामी कहलाता है, लेकिन उसके वापस आने पर वह उसका (प्रथम पति) का नौकर, या केवल मान्यता प्राप्त यार अथवा ''आधे का साझीदार'' बन जाता है। भ्रातृीय बहुपतित्व की अवस्था में भी, छोटे भाई सदा पूर्ण अर्थों में पति नहीं होते हैं, यद्यपि वे बड़े भाई की पत्नी का उपभोग कर पाते हैं, तथा कभी–कभी उसके बच्चे उन लोगों के भी बच्चे माने जाते हैं। अनेक बहुपत्नीक

लोगों में विभिन्न पति सामान्य पत्नी के साथ क्रम से रहते या सहवास करते हैं– प्रत्येक पति को कुछ निश्चित समय दिया जा सकता है; और यदि वे सब भाई हैं, तो कभी–कभी बड़े भाई को इस सम्बन्ध में आगे चलने को कहा जाता है।

बहुपतित्व के अनेक कारणों का उल्लेख किया जा सकता है। इनमें से एक कारण स्त्रियों और पुरुषों के अनुपात का ठीक न होना है। कुछ बहुपतिक लोगों में स्त्रियों की तुलना में पुरुषों की संख्या बहुत अधिक मिलती है। बहुपतित्व के प्रेरक कारक आर्थिक भी हो सकते हैं। यह उन क्षेत्रों में जनसंख्या के अवरोधक के रूप में काम कर सकता है, जहाँ की सीमित भूमि अधिक जनसंख्या के भार को वहन नहीं कर सकती है, जहाँ विभिन्न पति होते हैं, वहाँ परिवार की सम्पत्ति अविभक्त रहती है; तथा जहाँ पृथक् रूप से व्यक्ति पत्नी का मूल्य चुकाने में असमर्थ होते हैं, वहाँ संयुक्त रूप से भाई या अन्य व्यक्ति एक सामान्य पत्नी खरीदकर रखने को विवश होते हैं। यह स्पष्ट है कि निर्धनता तथा स्त्रियों की दुर्लभता दोनों सरलता से बहुपतित्व के संयुक्त कारण हो सकते हैं। जहाँ स्त्रियां दुर्लभ हैं, वहां विशेष रूप से गरीबों के लिए अकेली पत्नी प्राप्त करना कठिन है। इन कारणों के अतिरिक्त, तिब्बत, हिमालय तथा दक्षिण भारत के कुछ लोगों की बहुपतित्व–प्रथा का आँशिक कारण यह बताया जाता है कि जब पति जानवरों की देखभाल करने या क्रय–विक्रय करने, पीछा करने अथवा युद्ध करने अथवा जीविका उपार्जित करने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने में संलग्न होता है, तो पत्नी को बहुत दिनों तक, बिना पति के, अकेले घर पर रहना पड़ता है तथा अनके कठिनाइयों या खतरों से घिरा रहना पड़ता है, जिन्हें दूर करने में बहुपतित्व से सहायता मिलती है। नायरों की इस असाधारण बहुपतित्व की प्रथा का सम्भवतः मुख्य कारण यह है कि नायर लोग पहले सैनिक थे, जिनका व्यवसाय केवल युद्ध करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं था, जिसके कारण वे सामान्य पति और पिता के रूप में पारिवारिक जीवन व्यतीत करने में असमर्थ होते थे, अतः उनमें इस प्रकार की बहुपतित्व की प्रथा प्रचलित हो गई। उनके लैंगिक सम्बन्ध रूस के जैपाराग कज्जाकों के से मिलते–जुलते हैं, जिनका एक मात्र व्यवसाय युद्ध और लूट–मार था। वे चारों ओर से घिरी हुई जगह में रहते थे जिसमें औरतों का प्रवेश निषेध था, लेकिन

वे इस घेरे के बाहर लड़कियों से लैंगिक सम्बन्ध स्थापित कर सकते थे, अतः उनको बहुपतिक की संज्ञा दी गई।

समूह–विवाह तिब्बत, भारत और लंका के बहुपतिक लोगों में पाया जाता है। तिब्बत और हिमालय के क्षेत्रों में ऐसे गृहस्थ हैं, जहाँ कई–कई पुरुषों के कई–कई सामान्य पत्नियाँ होती हैं। लंका के सिंहली लोगों में केवल यही प्रचलित नहीं था कि एक पुरुष के कई पत्नियाँ होती थीं, तथा एक स्त्री के अनेक पति हाते थे, अपितु वहाँ यह भी सामान्य प्रथा थी कि दो या तीन पुरुषों के सामान्य रूप से दो या तीन पत्नियाँ होती थीं। मुझे यह भी सूचना मिली है कि भारत के विभिन्न बहुपतित्व वाले लोगों में यदि कई भाइयों में से कोई भाई एक सामान्य पत्नी के अतिरिक्त अन्य पत्नी लाता है, तो उसे अन्य भाइयों को साझीदार बनाना पड़ता है। इसमें सन्देह नहीं है कि इन समस्त उदाहरणों में समूह–विवाह बहुपत्नीत्व और बहुपतित्व के संयोग के रूप में उत्पन्न हुआ है। यह सम्भव है कि प्राचीन ब्रिटेन–निवासियों के विवाह के सम्बन्ध में सीजर का वक्तव्य शायद इसी प्रकार के संयोग का उल्लेख करता है। वह कहता है : ''अपने गृहस्थी जीवन में उनमें एक प्रकार से पत्नियों के समुदाय की प्रथा थी, एक समूह में दस या बारह लोग संयुक्त रूप से रहते थे; विशेष रूप से भाई–भाई के साथ तथा पिता पुत्रों के साथ। इस प्रकार के विवाह–सम्बन्ध से जो बच्चे उत्पन्न होते थे, वे उस साझीदार के कहलाते थे जो सबसे पहले माता को वधू के रूप में गृहस्थी में लाता था।'' इस उद्धरण का अन्तिम अंश प्रायः यह संकेत करता है कि पत्नियों केक जिस समुदाय के बारे में कहा गया है, उसकी उत्पत्ति बहुपतित्व से सम्बन्धित है, बशर्ते इस प्रकार की प्रथा का वास्तव में अस्तित्व रहा हो।

जहाँ तक मुझे ज्ञात है, प्रामाणिक समूह–विवाह बहुपतित्व के साथ–साथ पाया गया है। लेकिन कुछ ऐसे भी लोग हैं, जिनमें एक प्रकार काम–साम्यवाद पाया जाता है जिसमें कुछ निश्चित–शर्तों के साथ, अनेक पुरुषों को अनेक स्त्रियों के भोग का अधिकार प्राप्त होता है, यद्यपि कोई भी स्त्री ऐसी नहीं होती है जो उनमें से एक से अधिक व्यक्ति के साथ ठीक से विवाहित हो। बहुपतित्व के उद्‌भव की परिस्थितियों से मिलती–जुलती इस काम–साम्यवाद से सम्बन्धित परिस्थितियों के परीक्षण से विश्वास हुआ है कि हमें इस

प्रामाणिक समूह–विवाह की पूर्व अवस्था के प्रमाण के रूप में स्वीकार करने का कोई अधिकार नहीं है, तथा यही बात अन्य विभिन्न प्रथाओं के सम्बन्ध में भी है जिन्हें इस अवस्था के अवशेषों के रूप में कल्पित किया गया है। कम–से–कम मैं उन लेखकों से भी सहमत नहीं हो सकता है, जो यह प्रतिपादित करते हैं कि समूह–विवाह विवाह का वह आदिमतम रूप था जिससे विवाह के अन्य रूप धीरे–धीरे विकसित हुए हैं।

11

विवाह की अवधि तथा इसे भंग करने का अधिकार

यह सामान्य नियम है कि विवाह अनिश्चित काल या जीवनपर्यन्त के लिए अनुबन्धित होता है, यद्यपि जीवन–पर्यन्त की अवस्था में भी, इसे किसी–न–किसी कारण के आधार पर, जीवन–संगियों के जीवन–काल में ही, बहुधा भंग किया जा सकता है।

कहा गया है कि कुछ असभ्य लोगों, विशेषतः कुछ निम्न आखेटकों तथा अत्यधिक आदिम कृषिजीवियों, में तलाक ज्ञात ही नहीं है या करीब–करीब ऐसा ही है; अन्य अनेक लोगों में यह बहुत कम है, अथवा नियमानुसार विवाह जीवनपर्यन्त चलता है; लेकिन अनेक ऐसी जनजातियाँ हैं, जिनके सम्बन्ध में बताया गया है कि उनमें तलाक प्रायः होता है अथवा विवाह अत्यल्प अवधि का होता है। बहुसंख्यक सरल लोगों में पति अपनी इच्छा पर या बहुत छोटे कारण के आधार या छल–कपट से तलाक दे सकता है, तथा बहुसंख्यक अवस्थाओं में यही अधिकार पत्नी को भी प्राप्त होता है। लेकिन हमें प्रायः यह भी बताया गया है कि बिना उचित या सद्कारण के पुरुष को पत्नी को तलाक नहीं देना चाहिए, तथा पत्नी को अपने पति से पृथक् नहीं होना चाहिए। सद् या उचित कारण क्या होता है– यह विचार भिन्न–भिन्न जनजातियों में भिन्न–भिन्न होता है। तलाक का बहुत सामान्य कारण पत्नी का व्यभिचारी होना होता है, तथा दूसरा अत्यधिक सामान्य कारण उसका बंध्या या बांझ होना है। कुछ जंगली लोगों में यदि पति पत्नी की उपेक्षा करता है, अथवा उसके साथ बुरा व्यवहार करता है, यदि वह अपने हिस्से का पर्याप्त काम नहीं करता है, या यदि वह उसे छोड़ देता है, अथवा वह बहुत दीर्घकाल तक घर से अनुपस्थित रहता है, तो पत्नी विवाह को भंग कर सकती है। पूर्व–मध्य अफ्रीका के कुछ आदिवासियों में वह ऐसे पति को तलाक दे सकती है, जो उसके कपड़े सीने से इन्कार करता है।

तलाक के नियमों तथा अन्य तथ्यों से भी ज्ञात होता है कि सामान्य रूप से निम्न प्रजातियों में स्त्री किसी भी दशा में अधिकारों से वंचित नहीं है, तथा उसकी स्थिति उच्च संस्कृति के लोगों की तुलना में प्रायः स्पष्ट रूप में अच्छी है। प्राचीन चीनी कानून के

अनुसार पति बंध्यापन, पति के माता–पिता की अवमानना करने आदि के आधार पर पत्नी को तलाक दे सकता है; जब कि ऐसा नहीं प्रतीत होता है कि किसी भी दशा में पत्नी को अपने पति को छोड़ने या पृथक्करण की माँग करने की अनुमति हो। यही स्थिति जापान में भी थी, लेकिन सन् 1873 मे ंएक कानून लागू किया गया जिसने सबसे पहली बार पत्नी को पति के विरुद्ध तलाक की कार्यवाही करने की अनुमति प्रदान की। सेमेटिक संस्कृति के लोगों में, पति को अपनी इच्छानुसार अपनी पत्नी को छोड़ने का कानूनी अधिकार प्राप्त था या अभी भी प्राप्त है। यहूदियों में यह असीमित अधिकार, व्यावहारिक रूप में, धीरे–धीरे समाप्त होने लगा था, तथा अन्ततः ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में औपचारिक रूप से उन्मूलित हो गया, यद्यपि उचित कारण के आधार पर पत्नी को तलाक देने का अधिकार बनाए रखा गया। दूसरी ओर, यहूदी कानून ने पत्नी को अपने पति को, तलाक देने का अधिकार कभी नहीं प्रदान किया, यद्यपि इसने उसे तलाक के लिए न्यायालय में प्रार्थना पत्र देने की अनुमति प्रदान की है तथा न्यायालय को इस बात के लिए अधिकृत किया कि वह पति पर इसके लिए जोर डाले कि वह पत्नी को तलाक के लिए अनुमति दे, लेकिन वह अनुमति देने के लिए विवश नहीं होता है, अपितु वह अपनी इच्छा पर निर्भर माना जाता है। मुसलमानी कानून के अनुसार पति जब चाहे अपनी पत्नी को छोड़ सकता है, लेकिन किसी भी परिस्थिति में, पत्नी अपने पति को तलाक नहीं दे सकती है, यद्यपि वह तलाक के लिए कार्यवाही कर सकती है। मुसलमानी जगत् के अनेक भागों में पति इस सीमा तक पत्नियों को तलाक देने के अधिकार प्रयोग करते हैं कि उसका कहीं भी कोई दूसरा उदाहरण नहीं है। लेन के अनुसार, कैरो में ऐसे पुरुष बहुत अधिक नहीं थे, जिन्हें यदि विवाहित हुए अधिक समय हुआ हो, तो उन्होंने एक पत्नी को तलाक न दिया हो, तथा मिश्र में ऐसे पुरुष थोड़े नहीं थे, जिन्होंने दो वर्षों की अवधि में बीस, तीस या इससे अधिक स्त्रियों से विवाह न किए हों। एक बार दक्षिणी मोरक्को का एक बर्बर मेरी सेवा में था, जिसने मुझे बताया था कि उसने बाइस स्त्रियों को तलाक दिया था।

इसके विपरीत, रूढ़िवादी हिन्दुओं के लिए विवाह एक पवित्र संस्कार है जिसे भंग नहीं किया जा सकता है। यदि कोई स्त्री व्यभिचार के लिए दोषी सिद्ध होती है, तो वह

अपने पद से च्युत की जा सकती है तथा जाति से निकाली जा सकती है; लेकिन इस अवस्था में भी सामान्य अर्थ में तलाक असम्भव होता है। वह नया पति नहीं वरण कर सकती है, तथा प्रायः वह दासी के रूप में अपने पति के घर में तो रहती ही है। वर्तमान काल में, उत्तर भारत में नीची जातियों द्वारा तथा दक्षिण में अनेक ऊँची तथा नीची दोनों जातियों द्वारा न्यूनाधिक रूप से रूढ़िवादी हिन्दुओं के विवाह विच्छेद के कानून की उपेक्षा हो रही है, तथा उनमें शास्त्र वचन के स्थान पर रूढ़ियों की प्रधानता हो गई है। जब हम योरोप के तथाकथित आर्य लोगों पर दृष्टिपात करते हैं, तो हम पाते हैं कि आरम्भिक काल में ग्रीक और रोमन लोगों में, हिन्दुओं की तरह ही, विवाह स्पष्टतः एक बहुत स्थायी प्रकृति का सम्मिलन होता था, यद्यपि परवर्ती काल में, भारतीय आर्यों की स्थिति के विपरीत, विवाह–विच्छेद बहुत सरल और अधिक प्रचलित हो गया। सिसरो–युग की करीब–करीब समस्त सुपरिचित महिलाओं का कम–से–कम एक बार विवाह–विच्छेद अवश्य हुआ था, तथा सेनेका ने कहा था कि स्त्रियाँ अपने वर्ष पतियों से गिनती थीं। ट्यूटन लोगों के प्राचीन प्रथाओं के कानून के अनुसार, पति तथा पत्नी के रक्त–सम्बन्धियों के बीच हुए समझौते के द्वारा विवाह को भंग किया जा सकता था। और यदि पत्नी बंध्या हो, व्यभिचारिणी हो, और सम्भवतः अन्य अपराधों के लिए दोषी हो, तो पति को उसे तलाक देने का अधिकार था।

तलाक के सन्दर्भ में ईसाइयत ने योरोपीय विंधायन में क्राँति की। सेण्ट मैथ्यू के अनुसार, ईसा ने यह शिक्षा दी थी कि स्त्री के व्यभिचारिणी होने के कारण पुरुष उसे पृथक् कर सकता है, लेकिन अन्य कारणों के लिए नहीं; और सेण्टपाल यह नियम निर्धारित करता है कि किसी ईसाई का विवाह अईसाई से होता है और अईसाई की मृत्यु हो जाती है, तो ''ईसाई किसी बन्धन के अन्तर्गत नहीं रहता है।'' फिर भी, प्रारम्भिक ईसाइयत की निवृत्तिमार्गी प्रवत्तियों के अनुसार, चर्च ने ऐसे वैध ईसाई विवाह के विच्छेद के निषेध का क्रमशः निश्चय किया, कम–से–कम जिसमें पति–पत्नी में लैंगिक सम्बन्ध स्थापित हो चुका हो, क्योंकि इस प्रकार का विवाह एक पवित्र संस्कार था, फलतः इसे सदा के लिए अविच्छेद्य होना चाहिए। इसके साथ–ही–साथ चर्च ने एक कानूनी प्रक्रिया भी स्वीकृत की

थी, जिसके अनुसार यदि धार्मिक निषेधों के आधार पर विवाह प्रारम्भ में गैर कानूनी भी था, तो जन सामान्य की भाषा में इसे ''विवाह बन्धन से'' विच्छेद कहते थे, यद्यपि ऐसे कहना गलत था, क्योंकि इसका तो यह आशय था कि जो विवाह कभी वैध नहीं रहा था वह सदा अवैध रहेगा, लेकिन व्यावहारिक रूप में इससे विवाह विच्छेद की सम्भावना हो गयी, जबकि सैद्धान्तिक रूप से विवाह अविच्छेद था। लार्ड ब्राइस का कहना है, ''निषेध से सम्बन्धित नियम इतने अधिक और इतने जटिल थे कि प्रायः किसी भी विवाह के अवैध घोषित करने के लिए कोई आधार खोज लेना बहुत सरल था।''

धर्मशास्त्रों की मान्यताओं के अनुसार विवाह एक धार्मिक संस्कार है तथा मृत्यु के पूर्व यह भंग नहीं हो सकता है, लेकिन सुधारकों ने इस मान्यता को अस्वीकार कर दिया। वे सब इस बात से सहमत हुए कि एक पक्ष के व्यभिचारी होने की स्थिति में दूसरे पक्ष को तलाक देने की स्वीकृति होनी चाहिए, तथा अबोध पक्ष (दूसरे पक्ष) को दूसरा विवाह करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए, तथा उनमें से अधिकाँश ने द्वेषपूर्ण पलायन या परित्याग को विवाह–विच्छेद का दूसरा वैध कारण माना। बाद का अभिमत ऊपर उद्धृत सेण्टपाल के सिद्धान्त–वाक्य पर आधारित है, जिसका लूथर द्वारा असाधारण रूप से ऐसा विस्तार किया गया था, जिससे इसके अन्तर्गत ऐसे व्यक्ति का भी द्वेषपूर्ण पलायन आ गया था, जो अईसाई भी नहीं था। उसने यह भी स्वीकार किया था कि लौकिक अधिकारी गण अन्य सशक्त आधारों पर भी तलाक की अनुमति दे सकते हैं, तथा अन्य अनेक सुधारक इससे भी आगे बढ़ गए। इन विचारों ने जर्मनी तथा योरोप के अन्य देशों के प्रोटेस्टेण्ट विधायकों पर अमिट प्रभाव डाला।

अंग्रेजी प्रोटेस्टेण्टवाद के जनक, संस्था के रूप में अन्य देशों के अपने बन्धुओं की अपेक्षा, अधिक रूढ़िवादी थे। फिर भी, वे इस सम्बन्ध में एकमत थे कि यदि पत्नी पतिभक्ता न हो, तो पति उसका परित्याग करके दूसरा विवाह करने के लिए स्वतन्त्र है, तथा प्रचलित अभिमत से यह प्रतीत होता है कि उसी प्रकार की परिस्थितियों में पत्नी को भी वैसी ही सुविधाएँ प्राप्त थीं। सुधार–युग के प्रारम्भिक दिनों में, तलाक के प्रश्न को विशेष रूप से दृष्टि में रखते हुए, धार्मिक संहिताओं के सामान्य संशोधन के लिए संकल्प किया

गया था; तथा इसी उद्देश्यपूर्ति के लिए हेनरी आठवें द्वारा तथा एडवर्ड छठे द्वारा धर्माचार्यों आयोग नियुक्ति किया गया था। इस आयोग के सदस्यों ने सिफारिश की कि ''सहवास और निवास से पृथक्करण'' का पूर्ण उन्मूलन होना चाहिए तथा व्यभिचार, पलायन तथा क्रूरता की अवस्था में पूर्ण विवाह–विच्छेद करने तथा निर्दोष या अबोध पक्ष को पुनः विवाह करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। लेकिन यह पूरी योजना विफल हो गई। सन् 1602 में, फोलजेम्बे के मुकदमें में न्यायाधीश ने यह निश्चय किया कि न्यायालय द्वारा पृथक्करण के बाद पुनर्विवाह रद्द या प्रभावशून्य था, तथा इस निर्णय के पश्चात् जेफरसन कहता है, ''हमारे पूर्वज अपूर्व कठोर और संकुचित वैवाहिक कानून के अधीन अनेक पीढ़ियों रहे। वास्तविक विवाह से निकलने के, मृत्यु के अतिरिक्त, समस्त मार्ग बन्द कर दिए गए थे।''

सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इंगलैण्ड में एक प्रथा प्रचलित हो गयी थी जिसने कानून की कठोरता को किसी सीमा तक कम किया। यद्यपि वैध अंग्रेजी विवाह केवल न्यायिक सत्ता के द्वारा भंग नहीं किया जा सकता था, लेकिन यह कार्य पार्लियामेण्ट के एक विशेष अधिनियम द्वारा संभव हो सकता था। फिर भी, इस प्रकार का पार्लियामेण्ट द्वारा तलाक कुछ पिरस्थितियों में केवल व्यभिचार की स्थिति में ही स्वीकृत होता था और केवल इसे तलाक निश्चित धनराशि व्यय करके ही प्राप्त किया जा सकता था, कभी–कभी यह धनराशि हजारों तक पहुँच जाती थी। सन् 1857 के ''नागरिक तलाक कानून'' में विवाह की अविच्छेद्यता के कानूनी सिद्धान्त के दुर्दान्त प्रतिरोध के उपरान्त परित्याग हुआ था। दूसरी ओर, स्काटलैण्ड में जब रोमन सम्बन्ध का विच्छेद हो गया, तो न्यायालय बहुत शीघ्रता से तलाकों की स्वीकृति देने लगे और सन् 1573 में पति या पत्नी की व्यभिचारिता को तलाक के एक कारण के रूप में स्वीकार किया गया।

18वीं शताब्दी में मानवीय स्वतंत्रता और प्राकृतिक अधिकारों की अवधारणा से युक्त नए दर्शन ने योरोप में तलाक सम्बन्धी विधायनों को अधिक लचीला होने की नई प्रेरणा प्रदान की। फ्राँस में नए विचारों ने ही 20 सितम्बर, 1792 के तलाक–कानून के लिए प्रेरणा दी। इस कानून की घोषणा में कहा गया है कि व्यक्ति की स्वतन्त्रता के अधिकार का स्वाभाविक परिणाम तलाक प्राप्त करने की सरलता है। यदि विवाह अविच्छेद्य है, तो इस

स्वतन्त्रता का लोप हो जाता है। तलाक दोनों पक्षों की पारस्परिक इच्छा पर स्वीकृत किया जाता है, लेकिन स्वभाव के असामंजस्य और अन्य अनेक आधारों पर एक पक्ष की इच्छा पर भी तलाक की स्वीकृति दी जा सकती है। किन्तु बारह वर्ष के उपरात 1762 के कानून को ''नैपोलियन्स सिविलकोर्ट'' की नई व्यवस्था ने अतिक्रमित किया, जिससे तलाक और अधिक कठिन हो गया, तथा 1816 के परावर्तनकाल में फ्राँस में इसका उन्मूलन हो गया; और 1884 तक यह पुनः प्रवर्तित नहीं हुआ। 19वीं शताब्दी में या उसके बाद अनेक रोमन कैथोलिक देशों में तलाक को कानूनी स्तर प्राप्त हो गया; यहाँ तक कि कैथोलिकों के बीच हुए विवाहों तक में भी। संयुक्त राज्य अमेरिका में केवल दक्षिणी कैरोलीना राज्य ऐसा था जिसने तलाक को स्वीकृति प्रदान नहीं की। संसार में केवल यही एक प्रोटेस्टेण्ट समुदाय है जो आज भी विवाह को अविच्छेद्य बनाए हुए है।

अमेरिका और योरोप के जिन राज्यों में तलाक कानून अनुसार वैध है, वहाँ तलाक के सबसे अधिक सामान्य आधार पति या पत्नी द्वारा किए गए कुछ प्रकार के अपराध हैं। यदि कोई पक्ष इस प्रकार के अपराध करता है, तो दूसरे पक्ष को तलाक की माँग करने का अधिकार है। इस सन्दर्भ में पति–पत्नी नियमानुसार पूर्णरीति से समान स्तर पर स्थिति हैं, लेकिन अन्य अवस्थाओं में दोनों पक्षों की स्थित समान नहीं है, जैसे यदि पत्नी व्यभिचार का कोई कार्य करती है तो प्रत्येक स्थान में इसे विवाह–विच्छेद का पर्याप्त कारण माना जाता है; लेकिन ऐसे भी देश हैं, जहाँ पति द्वारा व्यभिचार किए जाने पर कुछ विशेष स्थितियों में ही पत्नी को तलाक की माँग प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त है। परित्याग या दुर्भावनापूर्ण परित्याग, या औचित्यविहीन अथवा उचित कारण रहित परित्याग प्रायः–विशेष रूप से प्रोटेस्टेण्ट कानूनी पुस्तकों में–तलाक का एक आधार माना जाता है। अधिकाँश देशों में जहाँ तलाक की अनुमति है, वहाँ किसी प्रकार का दुर्व्यवहार इसके लिए पर्याप्त कारण है। किसी अपराध के लिए एक निश्चित दण्ड प्राप्त होना अधिकांशताः किसी पक्ष (पति या पत्नी) के तलाक की माँग करने का बहुप्रचलित आधार है। इसके अतिरिक्त कुछ विशेष अपराध और हैं जो तलाक के कारण के रूप में मान्य हैं, जैसे समर्थ होने पर भी पति द्वारा पत्नी के भरण–पोषण के कर्त्तव्यों की उपेक्षा करना, मद्यपता, जुआ खेलने की

अभ्यस्त आदत, बच्चों के साथ दुर्व्यवहार आदि। इतना ही नहीं, तलाक के आधारों में कुछ ऐसी भी परिस्थितियाँ अन्तर्निहित हैं जो किसी पक्ष को दोषी सिद्ध करती हों या न, लेकिन प्रत्येक दशा में दूसरे पक्ष केलिए विवाह को एक भार बनाती हैं, जैसे–पति या पत्नी की नपुंसकता, विक्षिप्तता या असाध्य विक्षिप्तता। स्विटजरलैण्ड के कानून में यह व्यवस्था है कि तलाक के लिए कानून में उल्लिखित कारणों में से कोई कारण नहीं वर्तमान है, लेकिन ऐसी परिस्थितियाँ हैं जो वैवाहिक बन्धन की स्थिरता को गंभीरतापूर्वक प्रभावित कर रही हैं, तो विवाह–विच्छेद हो सकता है। अनेक देशों में कुछ विशेष अवस्थाओं में दोनों पक्षों की स्वीकृति से तलाक देने की स्वीकृति है। ऐसी परिस्थति पारस्परिक स्वीकृति या अन्य रूप में एक निश्चित अवधि के लिए पति–पत्नी का पृथक्करण है। स्वीडन में पति या पत्नी की प्रार्थना पर न्यायिक पृथक्करण को एक वर्ष के उपरान्त तलाक में परिणत किया जा सकता है, लेकिन आजकल भी अधिकांश विधायक इस विचार के हैं कि पति–पत्नी में से किसी एक के दुर्घटनाग्रस्त होने पर ही अपरिहार्य रूप से विवाह का अन्त होना चाहिए। यह दुर्घटना मृत्यु हो सकती है अथवा कोई बहुत बड़ा दुर्भाग्य हो सकता है या अपराध अथवा अनैतिक आचरण हो सकता है। ये लोग दोनों पक्षों की पारस्परिक स्वीकृति की अपेक्षा इन कारणों को विवाह–विच्छेद का अधिक समुचित आधार स्पष्ट रूप में मानते हैं।

जब हम कानूनों से व्यवहार पर आते हैं, तो हम पाते हैं कि पश्चिम के विभिन्न देशों में तलाक की दर में बहुत अधिक अन्तर है। योरोप में स्विटजरलैण्ड में यह दर सबसे अधिक ऊँची है, लेकिन संयुक्तराज्य अमेरिका में किसी भी योरोपीय देश की अपेक्षा यह दर उच्चतर है। समस्त योरोपीय देशों की कुल तलाक–संख्या अमेरिका के तलाकों की संख्या से सम्भवतः कम है। इस वृद्धि का कारण संभवतः वहाँ के तलाक की प्रक्रिया की सरलता है। एक पत्नी यह आरोप लगाती है कि उसके पति ने उसके समक्ष घोड़े की सवारी के लिए कभी प्रस्ताव नहीं रखा, दूसरी स्त्री कहती है कि उसका पति 10 बजे रात्रि तक घर नहीं आता और जब घर आता है तो उसे बात करके जगाए रखता है। करीब–करीब उन समस्त देशों में जिनके सम्बन्ध में तलाक के आँकड़े प्राप्त हैं, हाल के वर्षों में तलाकों की संख्या में बड़ी द्रुतगति से वृद्धि हुई है और भविष्य के संबंध में भी यहाँ आशा की जा

सकती है कि जब दो व्यक्ति एक दूसरे के निकट संपर्क में तथा एक–दूसरे के आश्रय में इतना अधिक आते हैं जितना कि विवाह में पति–पत्नी आते हैं, तो यह एक प्रकार छोटा–सा चमत्कार ही होगा, यदि दोनों की इच्छायें परिपूर्ण सामंजस्य एकतानता के साथ कार्य करें; और आधुनिक सभ्यता में, जहा जीवन में स्वार्थों की सतत वृद्धि हो रही है, वैयक्तिक भेद निरन्तर बढ़ रहे हैं, मतभेदों के कारणों में वृद्धि हो रही है, तथा छोटे–मोटे विवाद प्रायः अधिक गम्भीर रूप धारण करने लगते हैं, वहाँ विवाह–बन्धन का भग्न होना अधिक स्वाभाविक है। इतना ही नहीं, लार्ड ब्राइस संकेत करता है कि हमारे युग में असंतोष की भावना परिव्याप्त हो रही है, इसीलिए हम इस युग को ''असंतोष का युग'' कहते हैं। यह देखा गया है कि तलाक और आत्महत्या (असंतोष की चरम अभिव्यक्ति) ने अत्यन्त निकट और सतत् सम्बन्ध व्यक्त किया है। दोनों गाँवों की अपेक्षा नगरों में अधिक सामान्य हैं, दोनों द्रुतगति से बढ़ रहे हैं, तथा तलाक दिए हुए व्यक्तियों में आत्महत्या का अनुपात असामान्य रूप से अधिक है। स्त्रियों की स्वतन्त्रता के कारण भी विवाह की अस्थिरता में वृद्धि हुई है। उस समाज में तलाक का अधिकतम प्रचलन स्वाभाविक है, जहाँ स्त्रियों को धनोपार्जन की सबसे अधिक सुविधा प्राप्त है। संयुक्त राज्य अमेरिका में करीब–करीब 2/3 तलाक स्त्रियों की माँग पर स्वीकृत किए जाते हैं।

यह बहुप्रचलित विचार है कि तलाक विवाह का शत्रु है, और, यदि इसे सरल बना दिया गया, तो यह परिवार की संस्था के लिए ही विनाशकारी सिद्ध हो सकता है। मैं इस दृष्टिकोण से सहमत नहीं हो सकता। मैं तलाक को दुर्भाग्य के आवश्यक उपचार के रूप में देखता हूँ तथा उन विवाहों की प्रतिष्ठा की सुरक्षा के एक साधन के रूप में स्वीकार करता हूँ, जो विवाह के नाम पर कलंक है। विवाह का अस्तित्व कानूनों पर आश्रित नहीं होता है। यदि इस छोटी–सी पुस्तक का मुख्य विचार सही है, यदि विवाह एक कृत्रिम सर्जना नहीं है बल्कि वैवाहिक और पैतृक गहन संवेगों पर आधारित एक संस्था है, तो जब तक ये संवेग रहेंगे तब तक यह संस्था रहेगी। और यदि कभी इनके अस्तित्व का अन्त होता है, तो संसार का कोई कानून विवाह को विनाश से नहीं बचा सकता।